शोधादर्श

४०

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

मार्च २०००

अब उपलब्ध

डॉ० शशि कान्त की शोध कृति

The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka

—द्वि० परिवर्द्धित संस्करण (2nd enlarged ed.) मूल्य रु० 295/-

प्रकाशक : D. K. Printworld (P.) Ltd.,
'Sri Kunj', F-52, Bali Nagar, New Delhi-110015

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन की लोकप्रिय कृति

Religion and Culture of the Jains

—चतुर्थ संस्करण (4th edition). मूल्य रु० 65/-

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि

—तृतीय संस्करण मूल्य रु० 160/-

प्रकाशक : Bharatiya Jnanpith—भारतीय ज्ञानपीठ,
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003

श्री रमा कान्त जैन की साहित्यिक कृति

गिलास आधा भरा है

मूल्य रु० 50/-

प्रकाशक : ज्ञानदीप प्रकाशन,
ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

प्रकाशनाधीन शोध कृतियां

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन कृत

The Jaina Sources of the History of Ancient India का द्वितीय संस्करण, और

प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष एवं महिलाएं का द्वितीय संस्करण

डॉ० शशि कान्त कृत

Political and Cultural History of Mid-North India का द्वितीय संस्कारित संस्करण

डॉ० (श्रीमती) अलका अग्रवाल कृत

प्राकृत मुक्तक काव्य वज्जालग्गं : एक अध्ययन

कोबा (गांधीनगर) १५ ३८२०७४

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध/प्रधान सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन
महामन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ—२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

णाणं णरस्स सारं - सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श-४०

वीर निर्वाण संवत् २५२६ मार्च २००० ई०

★ विषय-क्रम ★

१. गुरुगुण-कीर्तन : हेमचन्द्र सूरि —श्री रमा कान्त जैन ५

२. Relevance of Lord Mahavira's Message Today and Tomorrow —डॉ० ज्योति प्रसाद जैन ६

३. सम्पादकीय : भट्टारक छुल्लक भी नहीं—श्री अजित प्रसाद जैन १३

४. जैन-दर्शन और पर्यावरण-संरक्षण —डॉ विजय कुमार जैन २०

५. श्रावक कवि आसिगु —श्री वेद प्रकाश गर्ग २५

६. सचित—अचित विमर्श —पं० नाथूलाल जैन शास्त्री २६

७. समाज-चिन्तन : कलंकित होने से बचाओ —श्री मूलचन्द जैन ३२

८. शोध-समीक्षा : कलिंगराज खारवेल का हाथीगुम्फा शिलालेख —श्री ज्ञान चन्द जैन ३६

९. चिन्तन-क्षणिका : मान-स्तम्भ —श्री कैलाश चन्द जैन ४२

१०. गणतन्त्र दिवस की स्वर्ण जयन्ति पर आइये प्रण करें आज —श्री राजीव कान्त जैन ४३

११. समाज-चिन्तन : परिषद का हीरक जयन्ति अधिवेशन
—श्री अजित प्रसाद जैन ४४

१२. जीव दया : Prevention of Cruelty to Animals
—डॉ० शशि कान्त ४८

१३. रिपोर्ट : तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश
—डॉ० शशि कान्त ५१

१४. श्री अजित प्रसाद जैन का अभिनन्दन —श्री रमा कान्त जैन ५२

१५. इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की जन्म-जयन्ति
—श्री अंशु जैन 'अमर' ५३

१६. जिज्ञासा : श्री णमोकार मन्त्र —श्री शान्तिलाल के० शाह ५५
—डॉ० शशि कान्त ५६

१७. साहित्य सत्कार
नव प्रभात (भाग १, २, ३); जैन विद्या गोष्ठी;
जैन आगम प्राणी कोश; Ujjwala-Wani; श्रावक धर्म;
पनपता मिथ्यात्व; शाकाहार–मानवता और संस्कृति;
आत्मभाव–तत्त्वज्ञान; खरा सो मेरा; इतिहास की
अमर बेल ओसवाल; अमृत ज्ञान माला; जैन महाभारत;
सराक ज्ञानाञ्जलि काव्य —श्री अजित प्रसाद जैन ५७
सुमन वाणी; केसर क्यारी के पचास-वसन्त;
'समीर'-सौरभ; हम गीत ही गुनगुनाते रहे;
हे विश्वम्भर; अरुणिमा —श्री रमा कान्त जैन ६२
प्राचीन भारतीय देव-मूर्तियां;
Museums and Museology in U.P.;
संसार दर्पण; जैनविद्या; श्रमण;
प्राकृत विद्या; चिन्तन प्रवाह : सेवा से श्रेयस की ओर;
उपदेश रत्नमाला, सौभाग्य रत्नमाला, निबन्ध रत्नमाला,
आदर्श निबन्ध; नगरकोट-कांगड़ा महातीर्थ;
तीर्थ श्री स्वर्णगिरि-जालोर —डॉ० शशि कान्त ६६

१८. समाचार विमर्श —श्री अजित प्रसाद जैन
आर्यिका-द्वय की मनोव्यथा ७६

हैप्पी बर्थ-डे टू यू ७८
२१वीं सदी का प्रारम्भ कब से ८०
दवाईयों पर शाकाहारी या मांसाहारी लिखा जाना जरूरी बना ८१
वैष्णवीकरण के बढ़ते चरण ८२

१९. अभिनन्दन ८४

२०. समाचार विविधा ८६

२१. शोक संवेदन ९४

२२. आभार ९५

२३. पाठकों की दृष्टि में ९६
डॉ० शैलेन्द्र कुमार शर्मा, डॉ० निजामुद्दीन,
डॉ० कैलाश नाथ द्विवेदी, श्री शान्ती लाल जैन बैनाड़ा,
श्री डाल चन्द्र जैन, डॉ० श्रीरंजन सूरि देव, पं० पद्मचन्द जैन शास्त्री,
श्री सुन्दर सिंह जैन, श्री महाबीर प्रसाद जैन,
श्री मानिक चन्द जैन लुहाड़िया, डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल,
डॉ० अशोक सहजानन्द, श्री देवेन्द्र कुमार जैन, श्रीमती विमला जैन,
डॉ० लाल चन्द्र जैन, डॉ० (श्रीमती) सूरजमुखी जैन,
श्री मोती लाल जैन 'विजय', श्री लाल चन्द्र जैन 'राकेश',
श्री सुबोध कुमार जैन, डॉ० सुरेन्द्र कुमार जैन, कु० रचना जैन,
श्री मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त', श्री सिंघई मुकुल जैन,
डॉ० (श्रीमती) रमा जैन, श्री सुनील जैन 'संचय',
श्री धन्य कुमार जैन, जस्टिस एम० एल० जैन

२४. इस अंक के लेखक १०८

वार्षिक शुल्क रु० ५०/- (मनी आर्डर द्वारा प्रेष्य)

एक प्रति का मूल्य रु० २०/-

आवश्यक

डाक दरों तथा कागज आदि के मूल्यों में वृद्धि के कारण शोधादर्श का वार्षिक शुल्क ५०/- रु० और एक प्रति का मूल्य २० रु० करना पड़ा है। अतः कृपया वर्ष २००० का वार्षिक शुल्क ५० रु० (पचास रुपये) मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' को भेजने का अनुग्रह करें।

—प्रबन्ध सम्पादक

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासम्भव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में **समीक्षार्थ** पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक / पत्रिका सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्‌बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

— सम्पादक मण्डल

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

गुरुगुण-कीर्तन

हेमचन्द्र सूरि

पातु वो हेम गोपालः, कम्बलं दण्डमुद्वहन् ।
षड्दर्शन पशुग्रामम्, चारयन्जैनगोचरे ।।

—प्रभाचन्द्र सूरि : **प्रभावक चरित्र**, ३०४

भावार्थ—कन्धे पर कम्बल और हाथ में दण्ड (डण्डा) धारण किये हुए, छहो दर्शनों के पशुओं के समूह को (छहों दर्शनों के अनुयायियों को) जैन धर्म रूपी गोचर भूमि में चराता हुआ यह हेम गोपाल संसार के सब प्राणियों की रक्षा करे।

प्रभावक चरित्र (१२७७ ई०) के अनुसार उपर्युक्त श्लोक भागवत धर्मानुयायी प्रकाण्ड विद्वान मुनि देवबोध ने एक अवसर पर आचार्य हेमचन्द्र से भेंट होने पर उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए श्रद्धा-सुमन स्वरूप उच्चरित किया था।

चातुर्विद्यमहोदधेर्भगवतः श्री हेमसूरेर्गिराम् ।
गम्भीरार्थविलोकने सदभवद् दृष्टि प्रकृष्टाम् ।।

—आचार्य मल्लिषेण : **स्याद्वाद मञ्जरी** (प्रशस्ति)

भावार्थ—चार विद्याओं के सागर स्वरूप भगवान श्री हेमसूरि की उत्कृष्ट वाणी में निहित गम्भीर अर्थ का अवलोकन करने पर दृष्टि निर्मल हुई।

उक्त आचार्य मल्लिषेण ने अपनी **स्याद्वाद मञ्जरी** (१२९२ ई०) में एक स्थान पर श्री हेमचन्द्र प्रभु को कलिकाल पर विजय प्राप्त करने के कारण जिनेन्द्र के समान, पंचमकाल की रात्रि के अन्धकार को नष्ट करने वाला सूर्य तथा तर्क आदि चार विद्याओं की निर्दोष रचना करने वाला ब्रह्मा कहा है। साथ ही उन्हें असीम प्रतिभा रूपी प्राणों को धारण करने वाला बतलाते हुए कहा है कि उनके शरीर में सरस्वती और वृहस्पति दोनों निवास करते थे।

ऊपर जिन आचार्य हेमचन्द्र सूरि की इस प्रकार प्रशस्ति की गई है, वह विक्रम की बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में गुजरात में हुए

सर्वाधिक लोकप्रिय, राजमान्य, सर्वोत्तम ग्रन्थकार एवं जिन शासन के महान प्रभावक आचार्य हैं। इनके सम्बन्ध में जानकारी स्वयं इनके द्वयाश्रय काव्य **सिद्ध हेम प्रशस्ति** और **त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित** के साथ-साथ प्रभाचन्द्र सूरि कृत **प्रभावक** चरित्र (१२७७ ई०) आचार्य मेरुतुङ्गसूरि कृत **प्रबन्ध चिन्तामणि** (१३०४ ई०), राजशेखर कृत **प्रबन्ध कोश** (१३४८ ई०), जिनमण्डन उपाध्याय कृत **कुमार-पाल प्रबन्ध** (१४३५ ई०), सोमप्रभसूरि कृत **कुमारपाल प्रतिबोध** तथा यशपाल कृत **मोहराज पराजय** में उपलब्ध बताई जाती है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार इनका जन्म समृद्ध गुर्जर प्रदेश में चालुक्यराज कर्ण के शासनकाल में धुन्धुक्क नगर में विक्रम संवत् ११४५ (१०८८ ई०) की कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन हुआ था। इनके पिता मोढ जाति के श्रेष्ठि चाचिग थे और इनकी माता का नाम पाहिणी था। माता-पिता ने इनका नाम चंगदेव रखा था। बाल्या-वस्था में ही चन्द्रगच्छीय आचार्य देवचन्द्रसूरि के आग्रह पर माता-पिता ने अपने इस इकलौते मेधावी बालक को उन्हें समर्पित कर दिया था। चंगदेव की शिक्षा-दीक्षा उक्त आचार्य देवचन्द्रसूरि की देखरेख तथा स्तम्भतीर्थ (खम्भात) के तत्कालीन सामन्त मन्त्री उदयन के संरक्षण में हुई। आचार्य ने इस बालक को दीक्षा देकर इसका नाम 'सोमचन्द्र' रखा। शीघ्र ही अपनी मेधा के बल पर बालमुनि सोमचन्द्र ने अप्रतिम पाण्डित्य प्राप्त कर लिया जिसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। जन-जन के मुख से अपने सुयोग्य शिष्य सोमचन्द्र की ख्याति सुनकर आचार्य देवचन्द्रसूरि ने उन्हें २१ वर्ष की वय में सूरि (आचार्य) पद पर अधिष्ठित कर उनका नामकरण 'हेमचन्द्र सूरि' किया। उक्त महोत्सव में, कहते हैं, तत्कालीन गुर्जर नरेश महाराज सिद्धराज जयसिंह भी सम्मिलित हुए थे। वे हेमचन्द्र सूरि की विद्वत्ता और प्रतिभा से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें अपना मित्र बना लिया। व्याकरण ग्रन्थ **सिद्धहेम शब्दानुशासन** की रचना करने की उन्हें प्रेरणा देने वाले महाराज सिद्धराज जयसिंह ही थे जिन्होंने राजकीय व्यय पर अपने राज्य में

उसके अध्ययन-अध्यापन का व्यापक प्रचार-प्रसार कराया। पूर्व प्रचलित व्याकरण ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन-मनन कर श्री हेमचन्द्र सूरि ने संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं के लिये सरल व्याकरण की रचना की थी। इस व्याकरण के आधार पर उनके शिष्य रामचन्द्र सूरि ने **हेमबृहद्वृत्तिन्यास** की रचना की और अन्य परवर्ती व्याकरण ग्रन्थों पर भी उनके व्याकरण ग्रन्थ का प्रभाव पड़ा, जैसा कि कवि त्रिविक्रम रचित **प्राकृतशब्दानुशासन** के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद के निम्नलिखित श्लोक ११ से विदित होता है—

प्राकृतरूपाणि यथा प्राच्यैराहेमचन्द्रमाचार्यैः।
विवृतानि तथा तानि प्रतिबिम्बन्तीह सर्वाणि।।

अर्थात् प्राचीन हेमचन्द्र आदि आचार्यों द्वारा जिस प्रकार प्राकृत के रूप बताये गये हैं वे सब उसी प्रकार इस ग्रन्थ में प्रतिबिम्बित हैं।

उक्त व्याकरण ग्रन्थ के अतिरिक्त आचार्य हेमचन्द्र सूरि को **अभिधान चिन्तामणि, अनेकार्थ संग्रह, देसीनाममाला** और **शेषनाममाला** नामक कोश ग्रन्थों, **काव्यानुशासन** नामक अलंकार कृति और **छन्दानुशासन** नामक छन्द विषयक कृति रचने का श्रेय है। महाराज सिद्धराज जयसिंह विषयक **सिद्धहेम प्रशस्ति** नामक संस्कृत द्वयाश्रय काव्य और महाराज कुमारपाल सोलंकी के चरित विषयक प्राकृत द्वयाश्रय काव्य (**कुमारपालचरितम्**) के रचयिता यही हैं। **वीतराग स्तोत्र** और **महादेव स्तोत्र** की भी इन्होंने रचना की। **प्रमाण मीमांसा, अन्ययोग व्यवच्छेद** (द्वात्रिंशिका काव्य), **अयोग व्यवच्छेद** (द्वात्रिंशिका काव्य) और **वेदांकुश** इनके न्याय-दर्शन विषयक तथा **अध्यात्मोपनिषद** इनके योग शास्त्र विषयक ग्रन्थ हैं। **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम्** इनका पुराण ग्रन्थ है जिसमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलभद्र और ९ प्रतिनारायण के चरित का वर्णन है। **परिशिष्टपर्वम्** अनुश्रुति आधारित इतिहास है तथा **थेरावलि** में इन्होंने जैन संघ और आगम साहित्य का, श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार, इतिहास प्रस्तुत किया है। डा० ज्योति प्रसाद जैन ने राजनीति शास्त्र पर इनकी कृति **अर्हन्नीति** का उल्लेख अपने शोध-

प्रबन्ध में किया है। इन महान ग्रन्थकार की रचनाओं का परिमाण साढ़े तीन करोड़ श्लोक बताया जाता है।

महाराज सिद्धराज जयसिंह (१०९४-११४३ ई०) के श्रद्धास्पद रहने के साथ-साथ उसके बाद गुजरात के सिंहासन को सुशोभित करने वाले महाराज कुमारपाल सोलंकी (११४३-११७३ ई०) के भी आचार्य हेमचन्द्र सूरि श्रद्धाभाजन बने। कहा जाता है कि महाराज बनने के पूर्व एक बार आचार्य हेमचन्द्र सूरि ने कुपित महाराज सिद्धराज के सैनिकों से कुमारपाल की प्राणरक्षा की थी। अतः वह उनका भक्त हो गया और उन्हें अपना गुरु मानने लगा। यही नहीं, अपने कुलधर्म (शैव धर्म) को त्याग वह जिनेन्द्र का उपासक हो गया। आचार्य हेमचन्द्र सूरि के प्रभाव से गुर्जर राज्य में महाराज सिद्धराज जयसिंह और महाराज कुमारपाल सोलंकी के शासनकाल में जैन धर्म का बहुविध उन्नयन हुआ। अनेक नये जिन मन्दिरों का निर्माण हुआ, जैन तीर्थों का उद्धार हुआ और जैन साहित्यकारों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ।

एक आस्थावान जैन आचार्य होते हुए भी हेमचन्द्र सूरि सर्वधर्मसमभाव के अप्रतिम प्रतीक थे, तभी वे वीतराग स्तोत्र के साथ-साथ महादेव स्तोत्र की समान भक्ति भाव से रचना कर सके और जैन तीर्थों के साथ-साथ गुर्जर राज्य के सोमनाथ जैसे जैनेतर तीर्थों की भी वैसी ही वन्दना-अर्चना कर सके। प्रभावक चरित्र के अनुसार उन्होंने महाराज सिद्धराज के साथ सोमेश्वर मन्दिर जाने पर भगवान शिव की स्तुति में निम्नलिखित श्लोक के सस्वर पाठ के साथ उन्हें नमस्कार किया था—

यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
बीतदोषकलुषः स चेद् भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तु ते॥

अर्थात् किसी भी धर्म में, कहीं भी, किसी भी रूप में, किसी भी अभिधा से जिन्हें सम्बोधित किया गया हो वह दोषकालिमा से मुक्त आप एक ही हो, उन आप भगवान को मैं नमस्कार करता हूं।

(शेष पृष्ठ १९ पर)

Relevance of Lord Mahavira's Message Today and Tomorrow

—Dr. Jyoti Prasad Jain

Lord Mahavira, the great benefactor of mankind, renounced all the worldly pleasures and dedicated himself entirely to the service, not only of mankind but of all living beings. "The nobler a soul is, the more objects of compassion it hath," said Bacon, and Mahavira's compassion for all and sundry knew no bounds. He has rightly been called the greatest 'apostle of ahimsa.' With him non-violence was the highest religion and the concept of 'live and let live' the golden rule of all human conduct.

The conflict between **himsa** and **ahimsa** dates from the beginning of man's history, but it was, perhaps, never before so poignant as at present. There is also no doubt that it was the first awakening of the ahimsite attitude in the soul of the uncivilized, barbarous, primitive man which marked his transformation from a veritable brute into a humane being. The moment he began to realise the truth and justice of the precepts 'live and let live' and 'do unto others as you would have others do unto you', augered the dawn of human reason, culture and civilization. The endeavour to translate these wholesome precepts into practice gradually humanised the brute in man.

The brute could, however, not be completely annihilated; it still lurked and lived. The attraction of gross materialism, the desire to indulge in unrestrained sensual pleasures and the greed to acquire and possess more and more power and pelf tended to awaken the brute in man and goad it into fury.

And, in the face of this inhuman fury, humanity has often found itself paralysed. It was, therefore, left to the great teachers who, renouncing even the very idea of mundane pleasures, devoted themselves heart and soul to the eradication of inhuman tendencies from human society and helped it to regain itself. Again and again, in different times and lands, such masters have been born to help mankind.

Among these, the Jaina Tirthankaras of ancient India were the foremost in showing to suffering humanity the ahimsite way of life and peaceful coexistence, not only by precept but also by their own practice and conduct. Beginning with Lord Rishabhadeva, twenty-four such Tirthankaras gave in their respective times this message of peace and good-will to the world. The last in this series of great teachers was Vardhamana Mahavira (599-527 B.C.). He was a senior contemporary of the Buddha who always spoke with respect of this Nigantha Nataputta Mahavira, the last great exponent of the Shramana or Arhat current of ancient Indian culture which had ahimsa as its very keynote and fundamental creed.

Like the foregoing twenty-three Tirthankaras, Mahavira was a master propagator of what is now known as the Jaina creed and is credited with the reorganization of its following into a regular **sangha** or order. At the same time, he was one of those great teachers of mankind through whom the problem of the perfection of man came to be recognized as the highest achievement for progressive humanity. All the rules of religious life, which he enjoined, were intended to be practical aids in the

attainment of the perfection of the Self. He did not preach to others what he had not practised himself. His was the path of patience, forbearance, self-denial, forgiveness, humanitarianism, compassion and consideration, in short, of sacrifice, love and kindness.

Mahavira, as his name indicates, was an embodiment of physical, moral and spiritual courage of the highest order, and the supreme lesson of ahimsa rings out from every chapter and verse of his life. He believed in non-violence not merely in action but also in word and thought. He and, after him, the Jain saints who followed in his footsteps, never tired of reawakening humanity to its duty towards itself as well as other living beings. Ahimsa, the first principle of higher life, is to be the rule of all conduct. Life is sacred in whatever form it may be found to exist. Jainist culture stands for universal well-being and for universal brotherhood. Its aim is spiritual uplift and ultimate perfection of the soul, hence it enjoins on its followers the greatest self-control. It deprecates the action of those who for their selfish ends, pleasure, wanton wilfulness, or even by careless or rash conduct, hurt others' feelings or deprive them of their life-forces. To treat others as one's own self is Mahavira's principal teaching. Once this truth is realized, all other questions are easily solved. The end cannot justify the means. Good cannot come out of evil. Violence cannot pave the way for peace and happiness.

According to Mahavira's faith, every living being is endowed with a soul. All souls are alike and possess inherent goodness in them. Every one

of them can attain the highest spiritual perfection, although it is dependent on the conditions of its bodily existence and on the environments it finds itself placed in, still in however limited a degree or however slowly, it can always aspire to and achieve the supreme spiritual evolution. If men come to realize this noble community of interest among all living beings, they are sure to love one another and also subhuman life.

The path to this spiritual evolution, as practised and propagated by Lord Mahavira, consists in a harmonious combination or right faith, right knowledge and right conduct. The last chiefly consists in ahimsa or non-violence, truthfulness, honesty, celibacy and non-covetousness or possessionlessness. Without the other four, ahimsa is meaningless. Everyone is at liberty to follow this noble path according to his or her capacity and circumstances. An aversion to covetousness, in other words, an ever present wakefulness to keep down one's own requirements and possessions, is a primary condition of the ahimsite way of life.

Thus gave Lord Mahavira to suffering world his noble message of salvation, physical, moral and spiritual, more than two thousand and five hundred years ago, and it is still true and practicable. His teachings, and the values he cherished and advised others to cherish, transcend the limits of time and space. He was interested in the good, welfare and salvation of the entire humanity, without any distinction of sex, class, caste, colour, race or nationality. One of the greatest of great men of all times

(शेष पृष्ठ १३ पर)

सम्पादकीय

भट्टारक छुल्लक भी नहीं

अन्ततः बालाचार्य श्री का पूर्व घोषणानुसार भट्टारकीय पट्टाभिषेक सम्पन्न हो ही गया। प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी ने अपने लेख "नग्न मुनि एवं भट्टारक: स्वरूप और समीक्षा" (जैन प्रचारक दिसम्बर ९९ में प्रकाशित) में लिखा है कि "एक यथा जात मुद्रा के धारक मुनि श्री का सागवाड़ा की पुरानी भट्टारक पीठ पर पट्टाभिषेक किये जाने का समाचार कुछ जैन पत्रों में छपा है।"

अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद द्वय में से एक के विद्वान अध्यक्ष डा० रमेश चन्द्र जी ने अपने लेख "साधु : संस्था खतरनाक मोड़ पर" (दिशा बोध, अगस्त ९९ में प्रकाशित) में बालाचार्य जी के चातुर्मासोपरान्त भट्टारकीय पट्टाभिषेक किये जाने की घोषणा पर गम्भीर रूप से उद्वेलित हो कर यह ऐलान किया था कि **विद्वत् परिषद एक मत से किसी दिगम्बर मुनि के भट्टारक पद पर अभिषिक्त होने का घोर विरोध करती है तथा अपने समस्त सदस्यों का आह्वान करती है कि इस उपक्रम का पुरजोर विरोध करें तथा इसे सम्पन्न न होने दें।** उन्होंने श्रवणबेलगोला के भट्टारक स्वामी श्री चारुकीर्ति जी से भी गुहार की थी कि वे बालाचार्य जी के भट्टारकीय अभिषेक समारोह को अपना किसी भी प्रकार का समर्थन न दें क्योंकि यदि यह बुरी आंधी एक बार चल पड़ी तो आज जो अनेक शिथिलाचारी साधु भट्टारक बनने का स्वप्न देख रहे हैं, उनके भट्टारक बनने पर साधु संस्था को बहुत बड़ी चोट पहुंचेगी।

(पृष्ठ १२ का शेष)

and all lands, this saviour of mankind and his message are very much relevant in the present context. The many ills and evils of the modern civilization can easily be eradicated and the diverse problems of the world today and tomorrow can effectively be solved, if the rational teachings of Mahavira, the Great Hero, are put into practice judiciously. ★

इस पर टिप्पणी करते हुए हमने **शोधादर्श-३९** के अपने सम्पादकीय लेख में लिखा था कि उपरोक्त अनुनय विनय, विरोध, गुहार का बालाचार्य श्री के प्रस्तावित भट्टारकीय अभिषेक पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला और आखिरकार वही हुआ। दो वर्ष पूर्व पू० आ० दयासागर म० द्वारा उत्तर भारत के तीर्थ क्षेत्रों के सुप्रबन्ध हेतु उन पर भट्टारक पीठों की स्थापना की जोरदार वकालत किये जाने पर हमने **शोधादर्श-३४** के सम्पादकीय लेख में उक्त प्रस्ताव की समीक्षा में भट्टारक परम्परा की वर्तमान परिस्थितियों में अन्-उपादेयता पर चर्चा करते हुए पू० मुनि श्री सरल सागर म० की पुस्तक **आचार्य समीक्षा** से उनके निम्नलिखित निष्कर्षों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया था—

"भट्टारक वीतरागियों का विशेषण है। भगवान महावीर स्वामी के लिए भी 'भट्टारक' विशेषण प्रयुक्त हुआ है किन्तु वर्तमान में यह विशेषण मठाधीशों के लिये रूढ़ हो गया है। भट्टारक परम्परा तो स्पष्ट रूप से पिच्छि-कमण्डलु धारियों का अनादर है, क्योंकि ये तो निरन्तर भ्रमण करने वाले साधुओं की पहचान है, उन्हीं के हाथों में शोभा देते हैं·····भट्टारक पिच्छि-कमण्डलु के योग्य न होते हुए भी उनके बल पर अपने को मुनियो से छोटे (निर्वस्त्र न होने के कारण) पर ऐलक छुल्लक से बड़ा मानते हैं। भट्टारकों में अधिकांश मिथ्यात्व के पोषक, प्रबल समर्थक और प्रचारक हैं·····सरागी देव-देवियों की उपासना के प्रबल समर्थक हैं·····सुना जाता है, भट्टारक तीन बार तो भोजन करते ही हैं, रात्रि में भी लेते हैं, पूरे ऐशो आराम से जिन्दगी जीते हैं·····।"

हमारे उपरोक्त लेख के प्रसंग से समाज में इस चर्चा ने जोर पकड़ लिया कि मोक्ष मार्ग के साधकों में वर्तमान के भट्टारकगण किस श्रेणी में गिने जाने चाहिए तथा क्या उनका पिच्छि-कमण्डलु धारण करना उचित है ? अ० भा० दिग० जैन शास्त्रि परिषद के शास्त्र-मर्मज्ञ विद्वान अध्यक्ष प्राचार्य जी ने अपने लेख "पिच्छि की मर्यादा का अवमूल्यन न हो" (**शोधादर्श-३५** में प्रकाशित) में इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा था—

"हमारे मन में भी यह प्रश्न उठता रहा है कि जिन शासन में भट्टारक की मुद्रा किस श्रेणी में आती है……मुनि तो यह है नहीं, ऐलक भी उन्हें कह नहीं सकते जो मात्र एक कोपीन के धारी होते हैं। उन्हें छुल्लक मानना भी उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि छुल्लक ग्यारह प्रतिमाओं की मर्यादा से बंधे होते हैं जब कि जिन शासन देव-देवियों को नमस्कार करने के कारण उनके प्रथम दर्शन प्रतिमा के धारी होने पर भी सवालिया प्रश्न लगता है……मठ-सम्पत्ति के रखरखाव व उपभोग में लिप्त होने, रेल, हवाई जहाज, कार आदि में यात्रा करने के कारण आरम्भ-परिग्रह-अनुमति त्याग प्रतिमाओं के पालन की सम्भावना को तो स्थान ही कहां है।……पिच्छि को आगम में निर्मल जिन मुद्रा का ही चिन्ह बताया है। यह महाव्रतियों या ऐलक छुल्लक आदि ग्यारह प्रतिमाधारियों के ही हाथ में शोभा देती है। अन्य के द्वारा इसका धारण किया जाना इसकी मर्यादा का अवमूल्यन करना है।"

पर कदाचित् बालाचार्य श्री योगीन्द्र सागर जी की दृष्टि में भट्टारक का पद (विशेषकर यदि वह प्रारम्भिक चरण के भट्टारकों की भांति निर्वसन ही रहे तो) सामान्य दिगम्बर मुनि/आचार्य से कुछ श्रेष्ठ ही हैं निम्न नहीं, तथा स्व-पर कल्याण करने में अपेक्षाकृत अधिक सहायक है। अपनी शाकाहार यात्राओं के दौरान तीर्थंकर के विद्वान सम्पादक डा० नेमीचन्द जी ने भीण्डर जा कर वहां ध्यान डूंगरी पर चातुर्मास कर रहे बालाचार्य श्री का दि० ९ अगस्त, १९९९, को उनके साधना कक्ष में ४५ मिनट का एक लम्बा इन्टरव्यू लिया था। इसके सार अंश उन्होंने तीर्थंकर के दिसम्बर ९९ के अंक में प्रकाशित किये हैं। बालाचार्य श्री के सोच की एक झलक पाने के लिये निम्नलिखित अंश दृष्टव्य हैं—

"बालाचार्य श्री—मेरे भीतर तो सिर्फ एक ही भावना है—सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया। सब सुखी रहें, सब स्वस्थ रहें। बस इसी के बलबूते चल रहा हूं। मैं तीन काम कर रहा हूं इसके (व्याधि-ग्रस्त व्यक्तियों के मन्त्र-तन्त्रोपचार के) माध्यम से—सात्विक

काम करने की प्रेरणा का विश्वास, शाकाहार का ठोस प्रचार-प्रसार तथा मैं जिस लक्ष्य से निर्वसन (नग्न) हुआ हूं, जिस प्रयोजन से मैने पिच्छि कमण्डलु ग्रहण किये हैं—उसकी पूर्ति। सर्वप्रथम आत्म-हित फिर लोक हित।"

कदाचित् इसी सोच के चलते बालाचार्य जी ने भट्टारकीय अभिषेक के बाद भी दिगम्बर मुनि मुद्रा को नहीं त्यागा। डा० नेमी चन्द जी लिखते हैं कि उनकी "बालाचार्य जी से एकान्त में बहुविध चर्चा हुई–(वे) अनेक जनोपयोगी विषयों पर सह-चिन्तन करते रहे—खुल कर बात हुई। पर भट्टारक बनने के प्रश्न/प्रसंग को मैं जान-बूझ कर टाल गया। वह विवादास्पद अवश्य है, लेकिन नग्न भट्टारक होते थे, इसमें कोई सन्देह नहीं।" बालाचार्य जी के दीक्षागुरु, 'तपस्वी सम्राट' के विरुद से अलंकृत पू० आ० श्री सन्मति सागर म० ने अपने शिष्य के भट्टारकीय उपक्रम की कोई भर्त्सना की हो या इस कारण उन्हें अपने आचार्य पट्ट के उत्तराधिकार से वंचित करने की कोई घोषणा की हो, ऐसा हमें कहीं पढ़ने-सुनने में नहीं आया। लगता है वे भी कदाचित् इसका समर्थन करते हैं या डा० नेमी चन्द जी की भांति विवादास्पद मानते हैं। अभी दि० १२ फरवरी को पू० आचार्य श्री के लखनऊ प्रवास के दौरान् चारबाग मन्दिर जी में हमने आचार्य श्री से इस विषय का समाधान चाहा कि क्या भट्टारक का पद मुनि से ऊँचा होता है तो उन्होंने फरमाया "भट्टारक का पद बहुत ऊंचा है। तुम उनके (बालाचार्य जी के) काम देखो, नाम में क्या धरा है। भट्टारक तो भगवान महावीर स्वामी भी थे।" बालाचार्य जी के गत भीण्डर चातुर्मास में समाज के एक वर्ग के कई मान्य नेताओं ने बालाचार्य जी के सानिध्य में विविध सामाजिक-धार्मिक आयोजन सम्पन्न कर अपने को गौरवान्वित किया, पिच्छि छुआ कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। कदाचित् वे भी बालाचार्य जी के दिगम्बर मुनि मुद्रा के साथ ही भट्टारक पद अंगीकार करने में कोई बुराई नहीं समझते।

बड़ी विचित्र स्थिति है। श्री योगीन्द्र सागर जी दिगम्बर

मुनिराज भी हैं (और उसी रूप में पुज भी रहे हैं), साथ ही वे योगीन्द्र गिरि क्षेत्र के पीठाधीश स्थिरावासी भट्टारक स्वामी भी है। हो सकता है, भक्तों को कृतार्थ करने के लिये कभी-कभी वे पद-यात्राएं भी करें या फिर डोली-पालकी में शोभा यात्रा निकलवाएं तथा आवश्यकतानुसार वाहनों से भी यात्राएं करें और पर-कल्याणार्थ तन्त्र-मन्त्र के प्रयोग तो करते ही रहेंगे। कालान्तर में उनके अपने गुरु महाराज के आचार्य पट्ट पर अंकलीकर परम्परा के चतुर्थ पट्टाचार्य के रूप में भी आसीन हो जाने की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

इस परिप्रेक्ष्य में अब यह निर्धारित किया जाना अत्यावश्यक हो गया है कि वर्तमान के भट्टारकों को दिगम्बर जैन साधकों की किस श्रेणी में गिना जाना चाहिए तथा क्या उनका मयूर-पिच्छि धारण करना उचित है। दिगम्बर जैन समाज के सौभाग्य से सन्त शिरोमणि पू० आचार्य श्री विद्यासागर म० ने चातुर्मास समापन की बेला में गोम्मटगिरि (इन्दौर) में दिये गये अपने प्रवचन में इस विषय पर स्पष्ट रूप से अपना निर्णायक मत व्यक्त कर दिया है। आचार्य श्री के प्रवचन का सार संक्षेप में निम्न प्रकार है—

"जैन सिद्धांत और आचार संहिता के अनुसार जैन श्रमण साधक कितनी भी विकट परिस्थितियां आ जाएं किन्तु श्रावकों के आग्रह के बावजूद एक स्थान पर रुक कर के मोह के कारण वे आश्रय नहीं ले सकते। किन्तु किसी समय कुछ प्रदेशों में श्रमणों के सामने परिस्थितियोंवश विहार करना एक समस्या बन गई जिसके कारण भट्टारक परम्परा का उद्भव हुआ। भट्टारक मठाधीश बन गए। एक स्थान पर रहते हुए कालान्तर में उन्होंने वस्त्रों को अंगीकार कर लिया। श्रमण परम्परा का उज्जवल साहित्य अपने यहां विद्यमान है किन्तु भट्टारकी परम्परा के सम्बन्ध में अपने यहां कोई साहित्य उपलब्ध नहीं। जो अपवाद मार्ग होता है उसके लिए कोई साहित्य की रचना नहीं की जाती। जैन साहित्य में भट्टारकीय चर्चा का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु कई सेठ साहूकार

इसे आगमोक्त कहते हुए इस परम्परा का समर्थन करते हैं। भट्टारक परम्परा को निश्चित रूप से बन्द कर देना चाहिए। पता चला है कि वर्तमान में उत्तर भारत में मुनियों को भट्टारक बनाने का दक्षिण भारत के भट्टारकों ने बीड़ा उठाया है। उनके समर्थक जो कोई भी हों जैन शासन को जानने वाले नहीं हो सकते। वर्तमान में भट्टारक न मुनि हैं, न ऐलक हैं, न छुल्लक हैं। छुल्लक पद ग्यारह प्रतिमाओं की मर्यादा से बंधा है पर भट्टारक प्रतिमाओं का पालन नहीं करते। जो उद्दिष्ट भोजन ग्रहण करता हो अथवा मठाधीश हो, ग्यारह प्रतिमाओं की मर्यादा से बंधा न हो वह छुल्लक नहीं है, ऐलक या मुनि होने की तो बात ही नहीं। पिच्छि श्रमण का लिंग (चिन्ह) है। अन्य के हाथ में इसकी शोभा नहीं है। पिच्छिधारी स्थिरावासी, मठाधीश नहीं हो सकता। पिच्छि के साथ कोई ट्रस्टी नहीं बन सकता, ताला कुंजी नहीं ले सकता, बैंक बैलेन्स नहीं रख सकता, खेती बाड़ी नहीं कर सकता।"

पू० आचार्य श्री विद्यासागर म० के इस दो टूक वक्तव्य के बाद अब इसमें संशय की कोई गुंजाइश ही नहीं रह गई कि वर्तमान के दिगम्बर जैन भट्टारक गण, चाहे वे निर्वसन रहें या सवस्त्र, दिगम्बर जैन साधु की आगमोक्त निम्नतम श्रेणी—छुल्लक में भी नहीं गिने जा सकते तथा वे पिच्छि धारण करने के अधिकारी नहीं हैं। अतः दिगम्बर जैन आम्नाय की अस्मिता तथा पिच्छि की मर्यादा की रक्षा हेतु समाज के विद्वत् जनों, नेताओं व श्रेष्ठियों का यह पुनीत कर्त्तव्य हो जाता है कि वे भट्टारक स्वामियों से पिच्छि त्यागने की अनुनय-विनय करें, प्रबल आग्रह करें तथा उनके न मानने पर उनके निमन्त्रण न स्वीकार करें और जो धार्मिक आयोजन उनके सानिध्य में रखे जायें उनमें सम्मिलित न हों। पर दक्षिण भारत के भट्टारक स्वामी गण जो सैकड़ों वर्षों की परम्परा में पिच्छि धारण करते आ रहे हैं और पिच्छि अब जिनकी चर्या का आवश्यक अंग न रह कर केवल वेश की पहचान मात्र रह गई है, वे समाज की अनुनय स्वीकार कर पिच्छि त्यागने का उपकार करेंगे, इसकी कम

सम्भावना प्रतीत होती है। किन्तु भारत में दिगम्बर जैन मुनि बालाचार्य जी को नग्न भट्टारक बना कर सागवाड़ा जैसी प्राचीन पीठों को पुनर्जीवित करने या अतिशय क्षेत्रों के रूप में नई भट्टारक पीठों के सृजन का जो अभियान प्रारम्भ हुआ है उसके परिप्रेक्ष्य में दिगम्बर जैन मुनि तथा मुनि से बने नग्न भट्टारकों में अन्तर स्पष्ट करने के लिये यह अत्यावश्यक हो गया है कि ये नग्न भट्टारक पिच्छि धारण न कर सकें अन्यथा समाज को दिग्भ्रमित होने से नहीं रोका जा सकेगा। पिच्छि-विहीन भट्टारक होना भी कोई नई बात नहीं होगी। इतिहास साक्षी है कि अतीत में ऐसे प्रबुद्ध भट्टारक भी हुए हैं जिन्होंने पिच्छि धारण करना उचित नहीं समझा।

–अजित प्रसाद जैन

(पृष्ठ ८ का शेष)

अगाध ज्ञान के भण्डार आचार्य हेमचन्द्र सूरि इतने व्युत्पन्न मति और वाक्पटु थे कि शास्त्रार्थ में प्रतिद्वन्द्वियों को सहज ही निरुत्तर कर उनके भी श्रद्धाभाजन बन जाते थे। षड्दर्शनों के ज्ञाता न्याय, व्याकरण, साहित्य और आगम पर अधिकार पूर्ण लेखनी चला भारती का भण्डार समृद्ध करने वाले इन सच्चरित्र आचार्य हेमचन्द्र सूरि को 'कलिकाल सर्वज्ञ' का विरुद प्राप्त हुआ था। आचार्य हेमचन्द्र सूरि का जीवन ८४ वर्ष का रहा। उन्होंने विक्रम सम्वत् १२२९ (११७२ ई०) में समाधिमरण किया था। आचार्य हेमचन्द्र सूरि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व आज भी भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

–रमा कान्त जैन

जैन-दर्शन और पर्यावरण-संरक्षण

—डॉ० विजय कुमार जैन

पर्यावरण-संरक्षण आज की सबसे बड़ी चुनौती है। विज्ञान पर्यावरण के सन्दर्भ में अपने को 'पंगु' समझ रहा है। वह 'प्रदूषण' की जांच तो कर सकता है, लेकिन उसे रोकने में अपने को असमर्थ पा रहा है, क्योंकि यह प्रदूषण उसी की देन है—उपभोक्ता संस्कृति, 'इच्छा बढ़ाओ, उत्पादन बढ़ाओ', का परिणाम है। यही कारण है कि आज वैज्ञानिकों एवं विद्वानों को प्रदूषण रोकने एवं पर्यावरण-संरक्षण के लिये भारतीय धार्मिक विरासत की ओर झांकना पड़ रहा है। पर्यावरण-संरक्षण के प्रसङ्ग में भारतीय धार्मिक साहित्य बहुत समृद्ध है, चाहे वह वैदिक वाङ्मय हो, जैन वाङ्मय हो या बौद्ध वाङ्मय।

जैनधर्म ने पर्यावरण-संरक्षण को काफी महत्त्व दिया है। मानव सभ्यता के प्रारम्भ में ही भगवान् ऋषभदेव ने पर्यावरण-संरक्षण और जैविक-सन्तुलन बनाए रखने के लिये सशक्त सिद्धान्तों की स्थापना की थी तथा इस पृथ्वी के छोटे से छोटे प्राणी, वनस्पति व सूक्ष्म जीवों (माइक्रोब्स) की रक्षा एवं सम्मान की प्रेरणा दी थी जो कि स्थिर पर्यावरण के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

आदि पुराण[1] में उल्लेख है कि एक बार एक सभा बुलाई गई जिसमें विशिष्ट लोग आमन्त्रित थे। सभागार के सामने हरी घास लगी हुई थी। कुछ लोग उस घास को लांघते हुए आगे बढ़ गये, परन्तु कुछ लोग रुके रहे। जब ऋषभपुत्र भरत को यह पता चला तो उन्होंने घास रूपी वनस्पति कायिक जीवों पर दया करने वालों को ब्राह्मण की संज्ञा दी।

जैन दर्शन में द्रव्य की अवधारणा एवं पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं वनस्पतियों में जीव की अवधारणा से हमें ज्ञात होता है कि आज मनुष्य ने जिन सब चीजों को अपने उपभोग के लिए मान लिया है उन में भी सुख-दुख की अनुभूति होती है। अब वैज्ञानिक भी वनस्पतियों में चेतना मानने लगे हैं।

जीव—जीव दो प्रकार के होते हैं—संसारी और मुक्त।[2] संसार और मोक्ष दोनों में जीव प्रधान तत्त्व है। जीव अनन्त हैं। जो साधना-विशेष के द्वारा कर्मों एवं संस्कारों को क्षय कर देता है, वह मुक्त जीव है। जो इस संसार में परिभ्रमण करता है वह संसारी जीव है। जीव के भेद-प्रभेद का वर्णन नेमिचन्द्राचार्य कृत **गोम्मट्टसार** के जीवकाण्ड में विस्तार से किया गया है। संसारी जीव दो प्रकार के हैं—स्थावर और त्रस।[3] पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति स्थावर हैं।[4] त्रस जीव चार प्रकार के हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय।[5] स्थावर एकेन्द्रिय जीव हैं फिर भी उनमें स्थिर होते हुए भी त्रसत्व देखा जाता है। पृथ्वी, अप और वनस्पति—ये तीन तो स्थिरयोग सम्बन्ध के कारण स्थावर कहे जाते हैं, परन्तु अग्नि और वायु-कायिक—उन पांच स्थावरों में ऐसे हैं, जिनमें चलन क्रिया देखकर व्यवहार से उन्हें त्रस भी कह देते हैं।[6] एकेन्द्रिय जीव स्थावर जीव हैं, उनमें भी जीवत्व की सिद्धि होती है और अहिंसा मानने वाले उनकी रक्षा का भी प्रयत्न करते हैं, जो पर्यावरण-संरक्षण में सहायक है।

अजीव—जीव से विपरीत लक्षण वाला अजीव है।[7] पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये पांच द्रव्य अजीव हैं।[8] इनमें से पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है क्योंकि वह रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुण वाला है, बाकी शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं।[9] शब्द, गन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, भेदखंड, अन्धकार, छाया, उद्योत और आतप—ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक होने के कारण उनमें जो रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुण पाया जाता है, उसकी रक्षा के द्वारा प्रदूषण दूर हो सकता हैं तथा पर्यावरण-संरक्षण को सहारा मिल सकता है।

धर्म—'वत्थु सहावो धम्मो' अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है अथवा 'धारणात् धर्म इत्याहुः' अर्थात् जो धारण किया जाय वह धर्म है। अतः धर्म नाम स्वभाव का है। जीव का स्वभाव आनन्द है—ऐन्द्रिय सुख नहीं, अतः अतीन्द्रिय आनन्द ही जीव का धर्म हैं।

जो प्राणियो को संसार के दुख से उठाकर उत्तम सुख में धारण करे उसे धर्म कहते हैं। वह धर्म कर्मों का विनाशक तथा समीचीन है।[10] इस तरह निजी शुद्ध भाव का नाम ही धर्म हैं। वह संसार में पड़े हुए जीवों की चतुर्गति के दुखों से रक्षा करता है।[11] वस्तुतः देखा जाय तो पर्यावरण की रक्षा ही धर्म है और इसका मूल भी धर्म ही है। द्रव्य संग्रह में कहा गया है कि गति क्रिया में परिणत हुए पुद्गल और जीवों को गमन करने में जो सहकारी है, वह धर्म द्रव्य है जैसे जल मछलियों को गमन करने में सहकारी है, किन्तु वह न चलते हुए को नहीं ले जाता है, अर्थात् जैसे जल प्रेरक नहीं है, वैसे यह द्रव्य प्रेरक नहीं है। पर्यावरण के जो-जो गुण हैं, उसकी वृद्धि में जो सहकारी हैं, वही धर्म है। अतः पर्यावरण का धर्म से सीधा सम्बन्ध है क्योंकि सहकारी तत्त्वों से जीव प्रभावित होता है। षड् द्रव्य हमको दायित्व बोध कराते हैं और अपने सहकारी तत्त्वों से संरक्षण प्रदान करते हैं।

अधर्म—ठहरते हुए पुद्गल एवं जीवों को ठहरने में जो सहकारी है वह अधर्म द्रव्य है, जैसे छाया पथिकों को ठहरने में सहायक है, किन्तु यह द्रव्य चलते हुए को रोकता नहीं।[12] जीवों का सहकारी होने के कारण यह पर्यावरण को पुष्ट करता है।

आकाश—खाली जगह (space) को आकाश कहते हैं। इसे सर्वव्यापक अमूर्त द्रव्य स्वीकार किया गया है, जो अपने अन्दर सभी द्रव्यों को समाने की शक्ति रखता है। लोक में जो जीवों को अवकाश दे, वह आकाश है। लोकाकाश और अलोकाकाश के भेद से आकाश दो भेद वाला है।[13] धर्म, अधर्म, काल, जीव और पुद्गल—ये पांच द्रव्य जितने आकाश में रहते हैं, वह लोकाकाश है और उससे परे चारो तरफ अलोकाकाश है।[14] जैन दृष्टि में आकाश का अस्तित्व स्वीकार करके उसकी सुरक्षा के प्रति ध्यान आकृष्ट किया गया है, जिसमें पर्यावरण-संरक्षण के तत्त्व विद्यमान हैं।

काल—आगत, अतीत, अनागत पर्यायों को काल स्वीकार किया गया है। काल द्रव्य के दो भेद हैं—व्यवहार और निश्चय।

जो द्रव्यों में परिवर्तन कराने वाला है और परिणाम क्रिया आदि लक्षण वाला है वह व्यवहार काल है, और वर्तना लक्षण वाला परमार्थ काल है। जीव पुद्गल आदि के परिवर्तन में अर्थात् नवीन या जीर्ण अवस्थाओं के होने में काल द्रव्य सहायक है। इनमें से घड़ी, घण्टा, दिन-रात आदि व्यवहार है। सूक्ष्म परिणमनस्वरूप निश्चय काल है। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित है, जो कि रत्नों की राशि के समान पृथक्-पृथक् है। ये काल द्रव्य असंख्यात हैं। पर्यावरण एवं प्रदूषण की समस्या-समाधान काल द्रव्य पर ही आधारित है। जब हम एक-एक काल के अंश के प्रति सचेष्ट रहेंगे तभी उसका सदुपयोग कर सकते हैं।

पर्यावरण का महत्वपूर्ण सूत्र है—लिमिटेशन, अर्थात् पदार्थ की सीमा। कोई भी पदार्थ असीम नहीं है। पदार्थ की सीमा का यह सूत्र संयम का प्रतीक है। पदार्थ सीमित हैं, इसलिए उपभोग कम करो। पदार्थों का उपभोग कम हो, पानी का व्यय कम किया जाए, उपभोग का संयम किया जाए—यह सूत्र धर्म का नहीं पर्यावरण का है, किन्तु सच्चाई दोनों में एक है। धर्म कहेगा—कम खर्च करो, संयम करो और पर्यावरण-विज्ञानी कहेगा—पदार्थ कम हैं, उपभोक्ता अधिक हैं, इसलिये भोग की सीमा करो। तत्त्वार्थ सूत्र में अपरिग्रह अर्थात् भोगोपभोग के संयम का जो व्रत दिया है,[15] वह पर्यावरण-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। पदार्थ ज्यादा काम में मत लो, यह है संयम और इसी का नाम है अहिंसा-अपरिग्रह। यह पर्यावरण-विज्ञान है।

दैनिक जीवनोपयोगी कुछ जैन धर्मोक्त क्रियाओं द्वारा जीव-रक्षा हो सकती है, यथा—

१. कोई भी गन्दे वस्त्र किसी भी प्रवाहित पानी में न धोये ताकि उसमें रहने वाले सूक्ष्म जीव न मर सकें।

२. कोई भी प्राणी बिना छना अथवा अशुद्ध जल न पिए ताकि शरीर रोग मुक्त रह सके। स्वस्थ शरीर के लिए यह बहुत आवश्यक है। पानी से ही अधिकांश रोग फैलते हैं।

३. कुएं आदि से पानी निकालने पर बचे हुए बिना छने पानी को उसी जल-स्रोत तक पहुँचा दें ताकि सूक्ष्म जीवाणु अपना प्राकृतिक सन्तुलन बना कर जीवित रह सकें।

४. कोई भी जल की एक बूंद व्यर्थ नष्ट न करे, पेड़-पौधों से व्यर्थ ही फूल या पत्ते न तोड़े, बिजली या किसी भी ऊर्जा की एक यूनिट का व्यर्थ व्यय न करे।

५. परिग्रह को सीमित रखने के लिए आवश्यकता से अधिक संचय न करें, यही अपरिग्रह या परिग्रह-परिमाण व्रत है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैन दर्शन की पृष्ठभूमि में अहिंसा, अपरिग्रह, षड्द्रव्यादि में पूरी तरह पर्यावरण-संरक्षण के बीज विद्यमान हैं।

सन्दर्भ-संकेत :

१. जिनसेनाचार्य: आदिपुराण
२. उमास्वामि : तत्त्वार्थ सूत्र, २/१०
३. वही, २/१२
४. वही, २/१३
५. वही, २/१४
६. पंचास्तिकाय मूल, १११
७. सर्वार्थसिद्धि, १/४/१४
८. तत्त्वार्थ सूत्र, ५/१३९
९. द्रव्य संग्रह, ५/१३९
१०. रत्नकरण्डश्रावकाचार, २
११. परमात्मप्रकाश, २/६८
१२. द्रव्य संग्रह, १८
१३. सर्वार्थसिद्धि, ५/१२/२७८
१४. द्रव्य संग्रह, १९-२०
१५. तत्त्वार्थ सूत्र, २/१३

श्रावक कवि आसिगु

—श्री वेद प्रकाश गर्ग

राजस्थानी साहित्य के आदि काल के जैन रचनाकारों में कवि आसिगु का अपना एक विशेष स्थान है। कवि आसिगु या श्रावक आसिग श्री शांति सूरि के श्रावक भक्त थे। वे राजस्थानी कवि हैं। **जीवदया रास** नामक अपनी रचना में उन्होंने अपना परिचय देते हुए बताया है कि वह जालौर निवासी हैं। सम्भवतः वहाँ उनकी ननिहाल थी और वह वहीं बस गये थे। कवि के समय एवं वंश के परिचायक पद्य इस प्रकार हैं—

वाला मन्त्री तणइ पादोपइ, वेहल महि नंदन महि रोपइ।
तसु सरवहुं कुल चंद फलु, तसु कुलि आसाइतु अच्छंतु ।।
तसु वलहिय पल्ली पवर, कवि आसिगु बहुगुण संजुत्तु ।।५१।।
सा तउपरिया (?) कवि जालउरउ, माउसालि सुंमइ सीयलरउ।
आसीद वदोही (?) वयण, कवि आसिगु जालउरह आयउ ।।
सहजिग पुर पासहं भवणि, नवउ रासु इहुतिणि निप्पाइउ ।।५२।।
संवतु बारह सय सत्तावन्नह, विक्कम कालि गयइ पडि पुंनइ।
आसोयहं सिय सत्तमिहि, हत्थो हत्थि जिण निप्पायउ ।।
संति सूरि पय भत्तरियं, रयउ भवियहं मण मोहणु ।।५३।।

जालौर में आचार्य हेमचन्द्र सूरि के आदेश से राजा कुमार पाल सोलंकी ने 'कुमार विहार' नामक पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था। उसका कवि ने उल्लेख उक्त रचना में किया है—

उरि सरसति आसिगु भणइ, नवउ रासु जीव दया सारु।
कन्नु धरिवि निसुणेहु जण, दुत्तरु जेम तरहु संसारु।

कवि आसिगु की तीन रचनाओं का पता चला है और तीनों ही रास-परम्परा की कृतियां हैं—(१) **जीवदया रास** (२) **चन्दन-बाला रास** (३) **शान्तिनाथ रास**। **जीवदया रास** की रचना कवि ने सहजिगपुर के पार्श्वनाथ जिनालय में सं० १२५७ की आसोज शुक्ला सप्तमी को की थी। यह ५३ पद्यों की कृति है, जिसे मुनि जिनविजय जी ने **भारतीय विद्या**, भाग ३, में प्रकाशित कराया

था। (इसका प्रकाशन डा० दशरथ ओझा तथा डा० दशरथ शर्मा द्वारा सम्पादित रास और रासान्वयीकाव्य ग्रन्थ में भी हुआ है।) इस रास में श्रावक धर्म का निरूपण किया गया है तथा जीव दया, माता-पिता और गुरु की भक्ति, सत्य भाषण, शुद्धभाव से दान, तीर्थाटन आदि कर्मों पर बल दिया गया है। पुत्रकलत्रादि संसार के सम्बन्धों से चित्त को हटा कर मन को स्वाधीन करने तथा धर्माचरण के लिए कहा गया है। धर्म पालन करने वाले राजा दशरथ, भरतेश्वर, मान्धाता, नल, सगर और कौरव-पांडवों का उदाहरण दिया गया है। कवि कहता है कि जीव दया का परिपालन सबको करना चाहिए—

जीव दया परिपालिजए, माय बप्पु गुरु आराहिजए।

अन्त में कवि कहता है—

गउ दशरथु गउ लक्खणुरामु,
मांधाता नलु सगरु गओ,
गउ कवरव पाण्डव परिवारो।

अतः सबको अवश्य धर्माचरण करना चाहिए। धर्म पालन करते हुए सुन्दर वस्त्राभूषण धारण करना, पक्वान्न भोजन करना वर्जित नहीं है। कवि कहता है—

धम्मिहि संपज्जइ सिणगारो, करि कंकण एकावलि हारु।
धम्मि पटोला पहिरजहिं धम्मिहि सालि दालि घिउ घोलु।

कवि का कथन है कि दुखी प्राणियों की जीव दया भाव से दानादि द्वारा सहायता करनी चाहिए। यथा—

कवि आसिगु कलिअतरु सोइ, एक समाण न दीसइ कोइ।
के नरिपाला परिभमहि, के गय तुरि चंडति सुखासणि।
केइ नर कंठा बहहि, के नर वइसहिं रूप सिंहासणि।

इसमें जैन तीर्थों का भी वर्णन है, जिनमें सांचौर, नागद्रह, फलवर्द्धि और जालोर आदि उल्लेखनीय हैं। जीवदया रास की सं० १४२५ में लिखित प्रति बीकानेर के खरतरगच्छीय वृद्ध ज्ञान भंडार में संरक्षित है।

इस पूरी रचना में गेयमात्रिक एक द्विपदी और चउपई का क्रम बद्ध प्रयोग हुआ है और इस रूप में पूरी रचना गेय प्रतीत होती है।

चन्दनबाला रास ३५ पद्यों की रचना है। इसमें सती चन्दन बाला और उसके द्वारा दिया गया भगवान महावीर को आहार दान का प्रसंग वर्णित है। चन्दन बाला चम्पा की राज कन्या है। एक राजा के चढ़ाई करने पर उसका सेनापति चम्पा की राजमहिषी तथा चन्दन बाला का हरण कर ले जाता है। राजमहिषी तो आत्म-घात कर लेती है, किन्तु चन्दन बाला को सेनापति एक सेठ के हाथ बेच देता है। सेठानी उसे अनेक प्रकार की यंत्रणाएं देती है, किन्तु चन्दन बाला अपने संयम, सतीत्व और चरित्र पर अटल रहती है और श्री महावीर से दीक्षा लेकर ज्ञान प्राप्त करती है। इसमें चन्दन बाला की यंत्रणाओं में करुण तथा अन्त में शान्त रस का परिपाक हुआ है।

इस रास का साहित्यिक दृष्टि से भी विशेष महत्त्व है। हथकड़ी और बेड़ी में जकड़ी चन्दन बाला के हाथ से कोदों का आहार लेकर भगवान महावीर उसे बन्धन-मुक्त कर देते हैं। अन्त में वह उनसे दीक्षा ले लेती है। कथा मर्म स्पर्शी है। इसकी रचना जालोर में हुई थी। इसमें रचना-काल का निर्देश नहीं है, किन्तु **जीवदया रास** के रचनाकाल सं० १२५७ को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस रास का समय भी इसी के आस-पास ही रहा होगा। **चन्दनबाला रास** नामक यह रचना जैसलमेर के जैन-भण्डार से सं० १४३७ की लिखित एक स्वाध्याय पुस्तिका में प्राप्त हुई थी, जिसको श्री अगर चन्द नाहटा ने **राजस्थान भारती**, भाग ३, अंक ३-४, में प्रकाशित करा दिया था। प्रति का पुष्पिका-लेख इस प्रकार है—

'संवत् १४३७ वैशाख सुदी २ सुगुरु श्री जिनराज सूरि सदुप-देशेन व्य० देदा पुत्र्या देव गुर्वाज्ञा चिन्तामणि भूषित मस्तकमा मांकू श्राविकया आत्म पुरायार्थं श्री स्वाध्याय पुस्तिका लेखिता।'

(जैसलमेर बड़े भण्डार की प्रति, पत्रांक ३७१-३७४)

यह रास भी **जीवदया रास** की भांति गेय मात्रिक द्विपदी

और चउपई में प्रस्तुत की गई है।

भाषा के नमूने की दृष्टि से एक पद्य उद्धृत किया जा रहा है—

अेहु रासु पुण वृद्धिहि जंति
भाविहिं भगतिहिं जिण हरिदिति
पढइ पढावइ जे सुणइ तह सवि दुक्खइ खइयह जंति
जालउर नउरि आसगु भणइ जम्मि-जम्मि त्त सउ सरसत्ति।।३५।।

शांतिनाथ रास का रचना-काल सं० १२५८ माना जाता है। जिस समय जिनपति सूरि ने खेड नगर में शांति-जिनालय की प्रतिष्ठा सं० १२५८ में की थी, उसी समय शांति सूरि के शिष्य 'आसिगु' ने **शांतिनाथ रास** की रचना की, किन्तु इस रचना के सम्बन्ध में श्री अगर चन्द नाहटा जी को सदेह है कि यह आसिगु की रचना है अथवा किसी अन्य की है। उनका कथन है कि **शांतिनाथ रास** सं० १२५८ के आस-पास की रचना है और इसका रचयिता कोई खरतरगच्छीय विद्वान ही होगा। जैसलमेर में इसकी जो प्रति मिली है, वह अपूर्ण है, अतः उसके लेखक का नाम नहीं मालूम पड़ता। इसीलिए **शांतिनाथ रास** शांति सूरि के शिष्य आसिगु की या जिनपति सूरि के शिष्य जिनेश्वर सूरि की अथवा किसी अन्य की रचना है, अद्यावधि निर्णीत नहीं हो सका है। इस तथ्य का निर्णय इसकी पूर्ण प्रति मिलने पर ही सम्भव है। अतः इसकी पूर्ण प्रति की खोज की जानी आवश्यक है। वैसे यह संभावना अपने स्थान पर विद्यमान है कि यह रचना कवि आसिगु की भी हो सकती है। इस रास का एक पद्य दिया जा रहा है—

खेउ नचरि जो संति उद्धरणि कराव्यु,
बिहि समुदय ससुभत्ति। जिणावइ मूरि ढाविचुं।

खेड़नगर जोधपुर (राजस्थान) में है। अतः इसकी रचना वहीं हुई होगी। 'आसिगु' राजस्थान मरु गुर्जर भाषा का सम्भवतः प्रथम श्रावक कवि है।

——

सचित-अचित विमर्श

—पं० नाथूलाल जैन शास्त्री

श्री जुगुल किशोर जी मुख्तार प्रभृति अनेक विद्वान कंदमूलादि सचित को अचित करके खाने-खिलाने में दोष नहीं मानते थे। मुख्तार साहब के 'गलती और गलतफहमी' शीर्षक निबन्ध, जो उनकी **युगवीर निबन्धावली**, दूसरा भाग, में प्रकाशित है, में व्यक्त विचारों के प्रभाव से ऐलक पन्नालाल जी और ब्र० ज्ञानानन्द जी ने आहार में अचित आलू खाना प्रारम्भ कर दिया था।

अमेरिका के कुछ स्वाध्याय प्रेमी सज्जनों ने डॉ० नन्दलाल जी, रीवां, के माध्यम से यह जिज्ञासा की है कि क्या कन्दमूल सचित होने के नाते अभक्ष्य हैं। इसके समाधान हेतु प्राचीन आचार्यों के कथन नीचे प्रस्तुत हैं :—

रत्नकरण्ड श्रावकाचार, १४१, में आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि पंचम प्रतिमाधारी श्रावक कच्चे मूल, फल, शाक, शाखा, करीर, कन्द (आलू शकरकन्द आदि), प्रसून और बीज नहीं खाता, अर्थात् इन्हें अग्नि में पकने पर खा सकता है और ऐसा दया-मूर्ति मुनि आदि को आहार में दे भी सकता है।

मूलाचार, ८२७, में आचार्य वट्टकेर ने कहा है कि अग्नि में नहीं पके हुए फल, कन्द, मूल, बीज तथा और भी कच्चे पदार्थ जो खाने योग्य नहीं हैं, ऐसा जानकर धीर मुनि उन्हें स्वीकार नहीं करते।

श्रावकों और मुनियों सम्बन्धी उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से तो यही मालूम पड़ता है कि उक्त कन्द आदि अग्नि में पकने पर खाद्य हैं। यहाँ त्याग की दृष्टि से आचार्य का लिखना उचित है क्योंकि सूत्र रूप में वाक्य लिखना पूर्वाचार्यों का उद्देश्य रहा है।

श्रावकों के लिये समाधान यह है कि जैन अहिंसक होता है। जो हिंसा के कारण हैं उनसे वह दूर रहता है। उसके आहार-विहार में अहिंसा का पालन होता है। मद्य, मांस, मधु, पंच उदम्बर फल, कन्द (आलू, शकरकन्द, गाजर, मूली आदि), बैंगन, दही बड़ा, रात्रि अन्नाहार, अमर्यादित अचार आदि २२ अभक्ष्य का

प्रारम्भ याने पाक्षिक (अहिंसा का पक्ष रखने वाला) श्रावक की प्रथम अवस्था से ही त्याग होता है। श्रावक के बारह व्रतों में जब वह पंच अणुव्रत को दृढ़ करने वाले गुणव्रतों को धारण करता है तब भोगोपभोग के अन्तर्गत रत्नकरण्ड श्रावकाचार के श्लोक ८३ में उल्लिखित मद्य, मांस, मधु के त्याग के साथ ही श्लोक ८४ में उल्लिखित लाभ कम और जीव हिंसा अधिक ऐसे मूली, अदरक, शृंगबेर, मक्खन, निंब के फल, केतकी पुष्प इत्यादि को त्यागना चाहिए क्योंकि इनमें अनन्तानन्त बादर निगोद जीव तो रहते ही हैं और त्रस जीवों की भी शंका रहती है। अतः इन जीवों की हिंसा से श्रावक को बचना चाहिए।

यहाँ प्रकरणवश भोग के अन्तर्गत मद्य, मांस, मधु आदि का त्याग बताया है जिनका श्रावक आजीवन त्याग करता है। इसका यह अर्थ नहीं लेवें कि इस व्रत के पूर्व श्रावक मद्य, मांस आदि का त्यागी नहीं था क्योंकि **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** में श्रावक के पाक्षिक नैष्ठिक, साधक इन दर्जों का वर्णन नहीं करके प्रारम्भ से ही १२ व्रतों का व ११ प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है। यही बात चौथी प्रतिमा सचित्त-विरत में भी जान लेना चाहिये। प्रश्न यह है कि इस श्रावकाचार में मूल फल शाक आदि सम्बन्धी जो श्लोक १४१ है उसमें जो मूल फल शाक शाखा करीर कन्द आदि अभक्ष्य फल आये हैं उनका त्याग क्या इस चौथी प्रतिमा में होता है जबकि उसके पहले श्रावक तीसरी प्रतिमा तक इन्हें खाता था ? यहाँ भी प्रकरणवश ये नाम सचित के अन्तर्गत आए हैं। किन्तु यहाँ पूर्ववत् यह नियम है—

स्वगुणाः पूर्व गुणैः सह संतिष्ठंते क्रम विवृद्धाः ।।

अर्थात् पूर्व व्रतों के साथ आगे के व्रत पालन किये जाते हैं। यह भी **रत्नकरण्ड श्रावकाचार** के कर्ता आचार्य समन्तभद्र (द्वितीय शताब्दी ईस्वी) का कथन है।

अतः जब मूल, फल, शाक, शाखा, करीर, कन्द, प्रसून, बीज आदि का सचित और अचित दोनों प्रकार से अभक्ष्य और भोगोप-

भोग के अन्तर्गत त्याग हो चुका है तो यहाँ प्रकरणवश कहा गया मान लेना चाहिए। इसके पश्चात् सचित में ठण्डा छना जल और नमक जो सचित माना जाता है उसे लेना होगा। उनका त्याग इस प्रतिमा में है यह निश्चित होता है। यहाँ सकलकीर्ति कृत **श्रावकाचार** के अनुसार मूलफल आदि अभक्ष्य (त्याज्य) माने गये हैं, जो सचित शब्द द्वारा बताया गया है।

मुनिराज के आचार ग्रन्थ **मूलाचार** गाथा ८२७ में भी जो फल, कन्द, मूलबीयं आदि बतला चुके हैं उसका भी समाधान उक्त प्रकार ही है। किन्तु प्रश्नकर्ता लिखता यह है कि क्या हमें प्रथम-द्वितीय शताब्दी में हुए बट्टकेर आचार्य द्वारा किये गये समाधान ही मान्य होंगे? इस सम्बन्ध में इस गाथा ८२७ की जो व्याख्या आचार्य वसुनन्दि द्वारा की गई है, दृष्टव्य है :—

१. फलानि कन्दमूलानि, २. बीजानि, ३. अनाग्निषक्वानियेभवंति, ४. अन्यदपि आमकं यत्किंचित्। तदनशनीयं ज्ञात्वा नैव प्रतीच्छति नाभ्युपगच्छन्ति ते धीराः।

अर्थात्, १. कन्दमूल (यह स्वतन्त्र शब्द है) और २. बीज (यह अंकुरोत्पत्ति की अपेक्षा से अभक्ष्य है), ३. जो दूसरे फल अग्नि में नहीं पकाये गये हैं तथा ४. इसके सिवाय जो भी सचित कच्चे पदार्थ (ठण्डा छना हुआ जल, नमक आदि) हैं उन्हें सचित या अभक्ष्य मान कर साधु को नहीं देना चाहिये और न इन्हें साधु लेते हैं। ऐसे साधु धीर होते हैं।

अनग्निपक्व फलों में सभी भक्ष्य फल आते हैं, वे डाल या पाल में पके हुए होते हैं, किन्तु संदिग्ध होने से अग्नि में पका कर ही काम में लिये जाते हैं। इस गाथा के विषय के समर्थन में **मूलाचार** की ही निम्नलिखित गाथा ४८४ दृष्टव्य है :—

णह रोम-जंतु अट्ठी सूत्ण कुंडय पूय चम्म रुहिर मंसणि।
बीय फल कंदमूला छिण्णाणि मला चउ दसा हुंति॥

जिसका अर्थ है कि १४ आहार सम्बन्धी मल दोष हैं, जो ४६ दोषों

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

समाज-चिन्तन

कलंकित होने से बचाओ

–श्री मूल चन्द जैन

जैनधर्म दर्शन ने मनुष्य को पग-पग पर निर्देश दिया है कि जो स्वीकार करना है उसे अपने निर्मल विवेक से समझ कर अंगीकार करो। विवेक सर्वोपरि है, उसका हमेशा पैना बने रहना जरूरी है।

अनादि काल से सर्वोपरि मान्य जैनधर्म दर्शन का क्या कुछ अवमूल्यन हो गया हैं ? नहीं, वह तो शाश्वत मानव धर्म है, जैसा था वैसा ही रहेगा, फिर धर्म की अवमानना, उपेक्षा क्यों हो रही है ? यह अनुयायी के आचरण का दुष्प्रभाव है, और समाज के लिये घातक है। व्यावहारिक रूप में धर्म पर भी अस्थायी आंच तो आवेगी ही। विदेशी गुलामी में भी इस धर्म के अनुयायी आदर्श नागरिक माने जाते थे जिनके आचरण को बेदाग सर्वत्र समझा जाता था, देश और शासन में उनकी विशिष्ट गरिमा थी। स्वतन्त्रता के बाद अधिक निष्ठावान बनना चाहिए था, मगर दुर्भाग्य से हम लोग

(पृष्ठ ३१ का शेष)

के अन्तर्गत हैं। ये नख, रोम, हड्डी, रूधिर, मांस, बीज, कन्द, मूल फल आदि हैं। ये मुनिराज के आहार में आ जावें तो वह भोजन त्याज्य हो जाता हैं। इससे सिद्ध होता है कि नवधाभक्ति के बाद मुनिराज के आहार में कन्द मूल आदि के अग्नि पक्व होने पर भी त्याज्य माने जाने से ये अभक्ष्य ही हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कृत **भाव पाहुड**, गाथा १०३, में भी पं० टोडर मल जी के सहयोगी पं० जयचन्द जी ने बतलाया है कि कन्दमूलादि सचित याने अनन्त जीवनि की काया होने से अभक्ष्य हैं। इनके खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होकर अनन्त संसार में भटकना होता है। **श्रावक धर्म संग्रह** में कन्द मूलादि को अनन्त स्थावर (वादर) एवं सशंकित त्रस जीवों से सहित बतलाया गया है। ★

उच्छृंखल, भोगवादी और अनैतिक होते गये। हमारे अवगुणों एवं आपराधिक वृत्ति ने धर्म को भी सन्देह के घेरे में खड़ा कर दिया। इस विषम अकल्याणकारी स्थिति से समाज को तुरन्त उबरना होगा। दिनों-दिन फैलते अनाचार, दुराचार और शिथिलाचार ने समाज के वृक्ष की जड़ों को खोखला कर दिया है।

आचार्यों ने समाज में तीन महानुभावों—सन्त, विद्वान और धनी को पूर्व जन्म के शुभ कर्मोदय के फलस्वरूप पुण्यात्मा कहा है। वर्तमान और भविष्य में भी पुण्यात्मा बना रहना उनके आचरण पर निर्भर है। समाज इन तीनों का अनुसरण करता है। काल-दोष मानें अथवा दुर्भाग्य, इस समूह के अधिकांश पुण्यात्मा बनते जा रहे हैं पापात्मा। समाज गम्भीर संकट में फँस गया है। कुछ वीतरागी दीक्षा लेकर साधु और साध्वी वेशधारी अति घिनौनी, निन्दनीय, अमानवीय, अकल्पनीय हरकतें कर बैठे हैं और कर रहे हैं। कलंकित चित्र विश्व में विख्यात हो गया है। चन्द धनी और विद्वान भी इस दौड़ में पीछे नहीं रहे, अपने अवांछनीय कृत्यों से कलंक को सर्च-लाईट बन कर प्रसिद्धि दे रहे हैं। इसका दुष्परिणाम समाज भुगत रहा है। अधःपतन एकदम तो नहीं हुआ, काफी समय पहले आरम्भ हुआ था, जिसे देख कर भी जागरूक एवं जवाबदार सदस्य अनदेखी करते रहे, जो बेशर्म के पौधे समान फैलता गया।

राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्द जी का मत पढ़ा है—"दुराचार की उपेक्षा से दुराचार बढ़ता जाता है।" मूल कारण यही है। गंभीरता से विचार करना है :—(१) इस बुराई की जड़ क्या है, क्यों पनपी ? (२) मुनि और आर्यिका दीक्षाओं के लिए चुम्बकीय आकर्षण लेने और देने वालों में क्यों ? गिनती की होड़ में कच्ची-पक्की दीक्षायें क्या शास्त्रोक्त हैं ? (३) साध्य और साधन में एकरूपता है क्या ? (४) दोष रहित प्रतिष्ठित जन-जन के श्रद्धेय आचार्य, मुनि मौन क्यों हैं ? मौन से स्वीकृति किस बात को मिलती है ? कर्त्तव्य-परायणता से विमुख होने का कारण कौन स्पष्ट करेंगे ?

भ्रष्ट धन को महत्व देकर प्रताड़ना के स्थान पर अपराधी को

सम्मान देने से क्या सन्देश जाता है ? "लोभ पाप का बाप" सिद्ध तथ्य है, वैसा ही वर्तमान बुराईयों की जननी यह काला धन है । जैसा धन वैसा ही बनेगा अन्न और होवेगा मन-परिणाम, इसकी कल्पना करें । त्यागी को उनकी इच्छा पूर्ति हेतु अथवा अपनी चापलूसी आदत के वशीभूत वर्जित साधन-सामग्री जुटाना क्या उचित है ? क्या सुस्वादु एवं गरिष्ठ आहार देना आदि श्रावक के विवेकहीन कार्यों से त्यागी निरन्तर निरंकुश या संयम-से-च्युत नहीं हो रहे हैं ? वीत-रागी दीक्षित नर-नारी त्यागी इतने पतित कैसे हो सकते हैं—बुद्धि अपने तर्क से मन को मनवा ही देती है, सप्रमाण घटनायें दिखाकर, सुना कर और पढ़ कर । त्यागी वर्ग में घटित शील-भंग और गर्भ-पात की घटनाओं के प्रति अगर उपेक्षा बरती गयी तो जैन-संस्कृति के लिए भयावह होगा ।

धर्म का कभी नाश नहीं होता है क्योंकि वह मानव का नैसर्गिक स्वभाव है । अनुयायी बदलते रहते हैं । सभी तीर्थंकर क्षत्रिय थे । अनुशासन, समर्पित श्रद्धा एवं परोपकार क्षत्रियों का प्रकृत्ति-दत्त चारित्र है । उनका नेतृत्व विसंगति से समाज को बचाता रहा । वैश्य वर्ण का अनुयायी बनना, और उसका समाज में अपना वर्चस्व कायम करना कल्याणकारी सिद्ध नहीं हुआ। व्यावसायिक वृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ । स्वार्थ, लोभ, अनुशासनहीनता, आचरण में शिथिलता, देना कम और बदले में अधिक चाहना, गुप्तदान नहीं वरन् पूंजी निवेश (इन्वेस्टमेंट) होने लगा । प्रकाश में भी प्रदूषण घुस गया ।

रोगी की दुर्दशा का यानी रोग का निदान ज्ञात हो गया है । अब समुचित इलाज पथ्य सहित आरम्भ करना जरूरी है । नगरों, शहरों, कस्बों में "धर्म को कलंकित होने से बचाओ आन्दोलन" का लक्ष्य बना कर समिति का गठन करना होगा । इस समिति को तीनों पुण्यात्मा वर्ग के आपराधिक सदस्यों की पहचान सही ईमानदारी से करके तथ्यों को उजागर करना होगा, उन्हें समझाना होगा अन्यथा बहिष्कार तक करना होगा । यह कार्य सरल तो नहीं है,

मगर असम्भव भी नहीं है। मन्द बहता पवन मक्खी भी नहीं उड़ा पाता, मगर आँधी बन कर तूफान की गति से बह कर विशाल पहाड़ तक को जड़-मूल से मिटा देता है। अमरबेल हरे-भरे वृक्ष के शिखर पर फैल कर उसके रस से स्वयं का पोषण करती है और वृक्ष सूख कर मर जाता है। अमरबेल का पोषण बुद्धिमत्ता नहीं है, वह तो दिखे और हटा दो। हरियाली पनपती रहेगी। गंगा (साधु) गंगोत्री से इलाहाबाद तक पाप धोती रही, दूषित नहीं हुई जितनी दूषित यमुना (धनी) और सरस्वती (विद्वान) नदियों को अपने में मिला कर वह इलाहाबाद में हुई है। गंगा स्वयं भी अपने विशाल रूप और नाम प्रतिष्ठा के मोह में उलझ गई थी, उन दोनों नदियों को तो अपना भविष्य संवारना था। निर्मल श्रद्धेय साधु वर्ग से आवश्यक मार्ग-दर्शन एवं अपने स्पष्ट मत को बताने का सविनय आग्रह करके समाज को घातक प्रहार से बचाने का प्रयास करना होगा।

हमेशा ध्यान रखना है कि हम वीतरागी भगवान् के उपासक हैं। जुलूस एवं अन्य अति आवश्यक समारोहों को आडम्बर, दिखावे, और महंगी साज-सज्जा से रहित करके सादगीपूर्ण मितव्ययता से मनाना है। भीड़ आकर्षित करने के उद्देश्य से सिद्धांत विरुद्ध आधुनिक कार्यक्रम करना धर्म की साख को घटाता है। समारोह में बोलियों से कलश आदि करने के अधिकारी नहीं बनाये जावें वरन् यह अवसर चरित्रवान् समाजसेवी सज्जनों को मिले जिससे अपना चारित्र प्रधान स्वरूप प्रकट हो। अनावश्यक करोड़ों के निर्माण कार्यों एवं महंगे निमन्त्रण पत्रों का बहाव तथा भ्रष्ट धन का प्रवेश धार्मिक, सामाजिक कार्यों में रुकवाना जरूरी है। अपने क्षेत्र में बसे हुए आर्थिक रूप से कमजोर साधर्मी भाईयों की गिनती करके उनको रचनात्मक आर्थिक सहयोग देना अभीष्ट है। "अहिंसा परमो धर्मः" नारा जैन दर्शन का मूल मन्त्र है। साथ ही समाज को अधोगति में जाने से बचाने के लिये "सदाचरण ही संजीवनी है" का नारा भी प्रचारित करके सक्रिय होना होगा। विकृतियों एवं हीन कार्यों के आघातों से जीर्ण-शीर्ण समाज के भवन को धराशायी होने से बचाना ही हमारा कर्त्तव्य है, इसे सच्चाई से स्वीकार करना ही होगा। ★

शोध-समीक्षा

कलिंगराज खारवेल का हाथीगुम्फा शिलालेख

—श्री ज्ञान चन्द जैन

आज से २२ सौ वर्ष पहले उड़ीसा में एक महाप्रतापी महा-विजयी राजा खारवेल हुआ था। उसने पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर में विजय-यात्राएं करके चक्रवर्ती राजा का पद प्राप्त किया था। उसकी सेना में बहुत बड़ी संख्या में हस्ति सैन्य था, इसीलिए उसने 'महामेघवाहन' (इन्द्र) का विरुद धारण कर लिया था। उसके पास नौ सैन्य बल भी था। सुदूर दक्षिण में पांड्य राज्य के विरुद्ध सैन्य अभियान में उसने स्थल सेना तथा नौ सेना दोनों का प्रयोग किया था।

उसने भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि की एक विशाल प्राकृतिक गुफा के मुख एवं छत पर १७ पंक्तियों का एक लेख प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में खुदवाया था। यह गुफा स्थानीय भाषा में 'हाथीगुम्फा' के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन भारत में विविध स्थानों पर जो कृत्रिम गुहा-मन्दिर मिले हैं, उनमें उदयगिरि-खण्ड-गिरि की भी गणना होती है। उदयगिरि का प्रांत भाग 'कुमारी पर्वत' के नाम से प्रसिद्ध था और उसे अत्यन्त पवित्र माना जाता था। इसी कुमारी पर्वत पर उसने निर्वाण-प्राप्त अरहंतों की पूजा के लिए काया-निषिद्या बनवाई थी। उसी के समीप उसकी रानी सिंधुला ने भ्रमणशील श्रमणों (तपस्वियों) के निवास के लिए एक लेण (कृत्रिम गुफा) बनवाई थी और उसी के निकट एक निसिया का निर्माण कराया था। शायद इसे ही उसके अभिलेख में 'अरहन्त प्रासाद' भी कहा गया है। खारवेल की बनवाई काय-निषिद्या तथा सिंधुला की बनवाई निसिया, दोनों अब सुरक्षित नहीं हैं, किन्तु दोनों की संरचना स्तूपाकार होती थी। स्तूप पूज्य व्यक्तियों के स्मारक के रूप में बनाये जाते थे और उनकी पूजा की जाती थी। मूर्ति पूजा का प्रचलन होने से पहले स्तूप पूजा प्रचलित थी।

प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश डालने वाला राजा खारवेल का हाथीगुम्फा शिलालेख, प्रियदर्शी राजा अशोक के

शिलालेखों की भांति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार अशोक के शिलालेखों से बौद्ध धर्म के विकास तथा प्रचार-प्रसार पर ऐतिहासिक प्रकाश पड़ता है, उसी प्रकार खारवेल के शिलालेख से जैन धर्म के इतिहास पर पुरातात्विक प्रकाश पड़ता है। खारवेल अरहंतों तथा सिद्धों का उपासक था। अर्हं का अर्थ 'पूज्य,' 'श्रेष्ठ' होता है, अतएव अरहंत का शाब्दिक अर्थ होगा—वे महान आत्माएं जो अपने गुणों से पूज्य तथा श्रेष्ठ मानी जाती थीं। सिद्ध उन महात्माओं को कहते थे जिन्होंने योग या तप द्वारा सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त की हो। अरहंत को 'जिन' भी कहा जाता था। दोनों समान वाची शब्द हैं, जिनका शाब्दिक अर्थ होता है 'इन्द्रिय विजेता'। खारवेल के शिलालेख का आरम्भ अरहंतों और सब सिद्धों को नमस्कार से किया गया है।

विद्वानों ने अशोक का राज्य काल. ईसा-पूर्व २७२ से लेकर २३६ तक तथा खारवेल का ईसा-पूर्व १८५ से १७३-१७२ तक माना है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि खारवेल का राज्यारोहण अशोक के देहावसान के लगभग ५० वर्ष बाद हुआ था। जिस प्रकार प्रियदर्शी राजा अशोक व्यक्तिगत रूप से श्रमण भगवान बुद्ध का उपासक बन गया था, उसी प्रकार कलिंगराज खारवेल, जिसने मगध के राजा को अपनी पद-वन्दना के लिए विवश किया था, मथुरा को (बहुत सम्भवतः यवन) आक्रमणकारियों से विमुक्त कराया तथा सुदूर दक्षिण तक विजय यात्रा की थी, श्रमण भगवान वर्धमान महावीर का उपासक था। मथुरा से शक क्षत्रप एवं कुषाण शासन काल की उनकी अनेक प्रतिमाएं तथा आयागपट्ट (वर्गाकृत पत्थर से बने अलंकृत पूजापट्ट जिन पर स्तूप, जिन, अरहंत अथवा तीर्थंकर की आकृति तथा स्वास्तिक, नंद्यावर्त, पद्म आदि मंगल चिन्ह उत्कीर्ण होते थे) मिले हैं जिन पर उनके वर्धमान तथा महावीर दोनों नाम अंकित हैं। बौद्धागमों में उन्हें निर्ग्रन्थ श्रमण संघ का नेता तथा तीर्थंकर कहा गया हैं।

खारवेल के ठीक-ठीक समय के सम्बन्ध में विद्वानों में थोड़ा

मतभेद है, जिसका कारण यह है कि उसके राज्यकाल पर प्रकाश डालने वाला एक मात्र स्रोत उसका हाथीगुम्फा शिलालेख है जो काल के प्रभाव से कई स्थानों पर त्रुटित हैं। उसके अनेक अक्षर अथवा अक्षर-समूह मिट गये हैं अथवा घिस गये हैं, पढ़ने में नहीं आते। ऐसे स्थानों पर अनुमान से उसका पाठ स्थिर करना पड़ता है। इस शिलालेख का सुबोध तथा युक्ति संगत पाठ स्थिर करने वालों में डा० शशि कान्त का नाम भी आदर से लिया जायेगा। उन्होंने कौशाम्बी के प्राचीन इतिहास पर अपना विद्वत्तापूर्ण शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करके डाक्ट्रेट की डिगरी प्राप्त करने से पूर्व ही लखनऊ विश्वविद्यालय से इतिहास में एम० ए० करने के उपरान्त राजा खारवेल के शिलालेख पर एक गवेषणात्मक आलेख लिखा था। उसके साथ अशोक का भाब्रू शिलालेख भी दिया था जो बौद्ध धर्म के इतिहास का अध्ययन करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल में बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म दोनों की गणना श्रमण धर्मों में की जाती थी। भगवान शब्द 'भग' शब्द से बना है, जिसका अर्थ 'ऐश्वर्य' होता है। अतएव 'भगवान' शब्द का शाब्दिक अर्थ होगा—'ऐश्वर्यवान'। प्राचीनकाल में इस विशेषण का प्रयोग ऐश्वर्य-वान योगियों के लिए होता था। शंकराचार्य भी 'भगवान शंकराचार्य' कहे जाते थे। इसी प्रकार श्रमण भगवान बुद्ध तथा श्रमण भगवान महावीर, दोनों श्रमणाचार्य अपने अनुयायियों में इन्हीं विशेषणों के साथ पुकारे जाते थे।

डा० शशि कान्त ने दोनों श्रमण धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने की दृष्टि से हाथीगुम्फा तथा भाब्रू शिलालेखों का मूल पाठ तथा उसका अंग्रेजी अनुवाद अपने गवेषणात्मक आलेख में दिया है, साथ ही हिन्दी अनुवाद भी दे दिया है। क्या ही अच्छा हो कि वे कौशाम्बी (**Political and Cultural History of Mid-North India, from earliest times to 1248 A. D.**) तथा खारवेल पर अपने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ हिन्दी में भी प्रस्तुत करें। उनके खारवेल सम्बन्धी अंग्रेजी ग्रन्थ का प्रथम संस्करण समाप्त हो गया

था और दुर्लभ हो गया था। हर्ष की बात है कि अब इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हो गया है। इसमें उन्होंने प्राकृत भाषाओं के उद्भव तथा भारत की प्राचीन लिपियों के सम्बन्ध में दो अध्ययन-पूर्ण लेख जोड़ दिये हैं, साथ ही खारवेल सम्बन्धी कुछ विवादास्पद प्रश्नों पर अपनी नवीन टिप्पणियां भी दी हैं।

डा० शशि कान्त ने हाथीगुम्फा शिलालेख के कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों के जो पाठ भेद हैं तथा डा० काशी प्रसाद जायसवाल एवं डा० आर० डी० बनर्जी तथा डा० बी० एम० बरुआ ने जो भिन्न-भिन्न अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किये, वे भी दिये हैं। उन्होंने इन पाठ-भेदों तथा विद्वानों के अनुवादों का समीक्षात्मक विवेचन भी किया है। साथ ही कौन सा पाठ उन्हें युक्ति संगत प्रतीत होता है, इस पर अपना अभिमत भी व्यक्त कर दिया है। उन्होंने सम्पूर्ण मूल पाठ का अपना किया हुआ अंग्रेजी तथा हिन्दी अनुवाद भी दिया है।*

शिलालेख में कलिंगराज खारवेल ने अपने १३ वर्ष के राज्य-काल का वृत्तान्त वर्ष-क्रम से दिया है। पंक्ति ६, पंक्ति ११ तथा पंक्ति १६ में अतीत काल में घटित घटनाओं के वर्ष भी दिये हैं। इन वर्षों की गणना किस संवत के आधार पर की गई है, यह नहीं दिया है। राजा खारवेल ने चतुर्दिक विजय के उपरान्त अपने १३वें राज्य वर्ष में कुमारी पर्वत पर अरहंतों की पूजा के लिये काय-निषिद्या का निर्माण कराया तथा प्रियदर्शी राजा अशोक ने जिस रीति से बुद्ध-वचनों के संरक्षण के लिये बौद्ध श्रमणों की तृतीय संगीति बुलायी थी, उसी रीति से वर्ष १६५ से व्युच्छिन्न होती हुई महावीर-वाणी के संरक्षण के लिये एक श्रमण सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में सभी दिशाओं से आए निर्ग्रन्थ श्रमण, ज्ञानी, तपस्वी

---

* देखें, **The Hathigumpha Inscription of Khara-vela and the Bhabru Edict of Asoka,** 2nd Enlarged ed., 2000, published by D. K. Print-world (P) Ltd., 'Sri Kunj', F-52, Bali Nagar, New Delhi-110015.

ऋषि तथा संघों के नायक कुमारी पर्वत पर हाथीगुम्फा वाले पर्वत शिखर पर रानी सिंधुला की निसिया के समीप शिला पर एकत्र हुए। श्रमण भगवान महावीर की शांतिदायी वाणी को उनके प्रधान शिष्यों ने, जो उनके ११ गणों अथवा संघों के नायक होने के कारण गणधर कहलाते थे, शब्द रूप देकर १२ अंगों में बांट दिया था, और क्योंकि इसे श्रुत रूप में स्मृतिबद्ध रखा गया था, इसलिए वह 'द्वादशांग श्रुत' कहलाता था। सम्मेलन में इसी द्वादशांग श्रुत का पाठ हुआ।

राजा खारवेल ने इस सम्मेलन के बाद ही हाथीगुम्फा शिलालेख खुदवाया था। इस सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए डा० शशि कान्त ने अपने अनुसंधानात्मक आलेख में तर्क संगत आधार पर सुझाव दिया है कि पंक्ति ६, ११ तथा १६ में दिये गये वर्ष महावीर निर्वाण संवत पर आधारित हो सकते हैं। डा० ज्योति प्रसाद जैन ने 'प्राचीन भारतीय इतिहास के जैन स्रोत' नामक अपने विद्वत्तापूर्ण अंग्रेजी शोध-प्रबन्ध में, जिस पर उन्हें डाक्ट्रेट की डिगरी प्राप्त हुई, सप्रमाण सिद्ध किया है, कि भगवान महावीर का निर्वाण १५ अक्टूबर, ५२७ ई० पू०, में हुआ और तभी से वीर निर्वाण संवत प्रचलित हुआ। इस निर्वाण संवत के आधार पर शिलालेख की पंक्ति ६, ११ तथा १६ में वर्णित प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं के वर्ष की संगति भली प्रकार बैठ जाती है। प्रसिद्ध प्राच्यविद्याविद् डा० ए० एल० बाशम ने डा० शशि कान्त की इस स्थापना को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है और डा० स्टेन कोनो तथा प्रोफेसर एन० एस० रामास्वामी जैसे विद्वानों ने अपनी सहमति व्यक्त की है। इस स्थापना के आधार पर प्राचीन जैनागमों में द्वादशांग श्रुत के व्युच्छिन्न होने के सम्बन्ध में जो अनुश्रुतियां मिलती हैं, उनकी संगति बैठ जाती है। इस सम्बन्ध में दो परम्पराओं के ग्रन्थों में दो प्रकार की अनुश्रुतियां मिलती हैं। एक परम्परा के अनुसार महावीर की द्वादशांग श्रुत वाणी उनके निर्वाण के १६२ वर्ष बाद तक अक्षुण्ण रही, दूसरी परम्परा के अनुसार १७८ वर्ष तक अक्षुण्ण रही। यदि हाथीगुम्फा

शिलालेख में दिये गये वर्ष महावीर निर्वाण संवत पर आधारित माने जायें तो प्रकट होगा कि वह १६५ वर्ष तक अक्षुण्ण रही और इस प्रकार जैनागमों की इन अनुश्रुतियों में ऐतिहासिक सच्चाई होने का पुरातात्त्विक प्रमाण मिल जाता है। इस शिलालेख से यह भी प्रमाणित होता है कि खारवेल के समय तक १२ अंगों के श्रुतधर श्रमण वर्तमान थे।

शिलालेख की अन्तिम १७वीं पंक्ति आरम्भ में त्रुटित है। यह शिलालेख का उपसंहार भाग था। १२-१३ अक्षरों की जगह त्रुटित है। शिलालेख की लेखन-शैली के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि यहां शिलालेख का वर्ष दिया होगा। डा० शशि कान्त ने अपनी इस स्थापना के आधार पर कि शिलालेख में दिये गये वर्ष महावीर निर्वाण संवत पर आधारित हैं, अनुमान लगाया है कि यहां पर 'पानतरिय-पनतिसत वस' (वर्ष तीन सौ पचपन) रहा होगा। अगर ऐसा था तो लेख १७२ ई० पू० में अंकित किया गया होगा।

हमारे देश का नाम भारतवर्ष था, इसका प्रथम पुरातात्त्विक प्रमाण खारवेल के इस शिलालेख में मिलता है। हमारे देश का विंध्य पर्वत से उत्तर का भाग उत्तरापथ कहलाता था, इसका प्रमाण भी इसमें मिलता है। प्राचीन काल में राजकुमारों को किन-किन विषयों की शिक्षा दी जाती थी, व उन्हें युवराज बना कर शासन कार्यों की शिक्षा दी जाती थी, इसका भी वर्णन इसमें है। राजा खारवेल गंधर्ववेद (अर्थात् लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य, सुगम संगीत, वाद्य संगीत आदि विद्याओं) का भी ज्ञाता था। उसने जनहित के जिन-जिन कार्यों में जितना धन व्यय किया, उसका भी विवरण है। उसने अपनी नई राजधानी कलिंगनगर की स्थापना करके अड़तीस लाख मुद्रा व्यय करके अपना राज प्रासाद प्राची नदी के दोनों तटों पर बनवाया था। राज प्रासाद स्थापना कला का सुन्दर नमूना था। उसके दोनों भागों को जोड़ने के लिये अनेक पुल बने थे। महा-विजयी राजा होने के अपने विरुद के अनुरूप उसने राज प्रासाद का नाम 'महाविजय प्रासाद' रखा था।

(शेष पृष्ठ ४४ पर)

चिन्तन क्षणिका

मान-स्तम्भ

—श्री कैलाश चन्द जैन

भोग भूमि के आदिम मानव का कर्म भूमि में प्रवेश, उसकी वन प्रान्तर से ग्राम, ग्राम से नगर, नगर से देश, देश से विश्व और विश्व से ब्रह्माण्ड ललाट तिलक—सिद्ध शिला के स्पर्श की अभियात्रा, उसके पुरुषार्थ के अदम्य विकास की रोमांचक गौरव गाथा है। परन्तु अणु-विखण्डक मानव, विज्ञान की अपरिमित अदम्य शक्ति का स्वामी बन कर, महाशून्य के उस पार सिद्ध शिला का अपना गन्तव्य भूल गया है। अनियंत्रित अतुल शक्ति जनित अहंकार ने उसे दिग्भ्रमित कर, महा विनाश के कगार पर पहुंचा दिया है।

आज से लगभग अढ़ाई सहस्र वर्ष पहले महाश्रमण महावीर का समवशरण विपुलाचल पर आयोजित होता था, परन्तु परम करुणामयी की अमृत वाणी अवरुद्ध थी क्योंकि तीर्थंकर की वाणी को यथावत आत्मसात करने वाली प्रज्ञा का धनी इन्द्रभूति गौतम अहंकारवश दर्शनावरणी की मृग मरीचिका में भटक गया था। उसके अहंकार हनन के निमित्त, यदि उस सुदूर अतीत में एक मान-स्तम्भ की आवश्यकता थी, तब आज के रत्नत्रय ह्रास के इस तिमिराच्छन्न काल में अनेकानेक मान-स्तम्भ अपरिहार्य हैं। आज भी गौतम हैं। परन्तु आज के अधिकांश गौतम तमसगत हैं; श्रावक घोर मिथ्यात्व में डूबे हैं, गुरु लोकेषणा के वश में हैं; पंडित चाटुकार हैं।

ऐसे विध्वंसकारी चक्रवात में फँसे आत्म-नाविक को प्रकाश-स्तम्भ की आवश्यकता है, और मान-स्तम्भ अहंकार-अंधकार-भंजक वह प्रकाश-स्तम्भ है! यद्यपि कि यह मात्र प्रतीक ही है, परन्तु प्रतीक भी सार्थक होते हैं। प्रतिविम्ब, प्रतिविम्बित की अलौकिक झलक के माध्यम बन, स्वरूप दर्शन की सम्भावना बन जाते हैं। अतः स्पृहणीय है, वन्दनीय हैं!

——

गणतन्त्र दिवस की स्वर्ण जयन्ति पर

आइये प्रण करें आज

-श्री राजीव कान्त जैन

वक्त बहता रहा
वतन सहता रहा
इतिहास दुहराता रहा
सबक सिखलाता रहा .१.

पर न सीखे हम
करें वही बार-बार
मान कर दर किनार
दुश्मन से करें करार .२.

सहकर, खाकर लाठी
जान तो बचायेंगे
अन्दर बैठा हीन-बोध
पर, बोलो, कैसे मिटायेंगे .३.

तथ्य तोड़ मोड़ सच
कब तक झुठलायेंगे
सहिष्णुता आड़ में नपुंसकता
कब तक ढांप पायेंगे .४.

आजादी भीख सही, पर
अब तो जगायें अहम्
सशक्त करें बाजू, व्यवस्था,
सरकार, संपदा और स्वयम् .५.

आइये प्रण करें आज
ऐसा भारत निर्माण करें
न भिक्षा, न भय
स्वाभिमान से सब जियें .६.

२६ जनवरी, २०००

समाज-चिन्तन

परिषद का हीरक जयन्ति अधिवेशन

—श्री अजित प्रसाद जैन

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद का हीरक जयन्ति अधिवेशन दि० १३-१४ नवम्बर, १९९९, को श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी में सम्पन्न हुआ। साहु रमेश चन्द्र जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में विगत ७५ वर्षों में परिषद द्वारा विभिन्न सामाजिक-धार्मिक कुरीतियों एवं विकृतियों के उन्मूलन के लिए किये गये सफल प्रयासों का उल्लेख करते हुए वर्तमान की समस्याओं पर विस्तार से चर्चा की। साधु संस्था का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि साधु परमेष्ठी हमारे आदर्श हैं, पूज्य हैं, किन्तु जिस प्रकार हम खण्डित प्रतिमा को नहीं पूजते वैसे ही **खण्डित-आदर्श साधु को पूज्य मानना उचित नहीं है।** उन्होंने इस पर भी क्षोभ व्यक्त किया कि आज लगभग १०० करोड़ रुपया प्रति वर्ष नये तीर्थ क्षेत्रों व मन्दिरों के निर्माण पर तथा बड़ी-बड़ी खर्चीली पंचकल्याणक-प्रतिष्ठाओं व विधानों आदि पर व्यय हो रहा है। साधु संस्था को इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर सही दिशा-निर्देश देना

(पृष्ठ ४१ का शेष)

प्रियदर्शी राजा अशोक तथा राजा खारवेल के शिलालेख से जो सबसे महत्वपूर्ण तथ्य उभर कर सामने आता है वह यह है कि भारतवर्षीय राजे व्यक्तिगत रूप से चाहे जिस धर्म के मानने वाले हों, सब धर्मों को पूजते थे, सब धर्मों तथा देव मन्दिरों का संरक्षण करते थे। आज सेक्यूलर राज्य (धर्मनिरपेक्ष राज्य) का जो आदर्श है, उसकी परम्परा हमारे देश में अत्यन्त प्राचीन काल से थी। इसी आदर्श के अनुरूप राष्ट्रकूटों के राज्यकाल में जब अरब मुसलमान व्यापारी पश्चिम तट के बन्दरगाहों पर आए थे तो उन्हें मसजिद बनवाने तथा अपने धर्म का आचरण करने की पूरी सुविधा प्रदान की गयी थी। ★

चाहिए। अन्य वक्ताओं ने भी आज की ज्वलन्त समस्याओं पर अपने विचार प्रस्तुत किए।

अन्त में जैन समाज को अल्पसंख्यक वर्ग घोषित किये जाने तथा जातिगत आरक्षण समाप्त करने के लिए सरकार से मांग सम्बन्धी तथा राजनीति व प्रशासन में सक्रिय भागीदारी, तीर्थों के जीर्णोद्धार के नाम पर उनकी ऐतिहासिकता से छेड़छाड़ न किये जाने तथा ब्र० शीतल प्रसाद जी के साहित्य को प्रकाशित किये जाने सम्बन्धी प्रस्तावों के अतिरिक्त एक प्रस्ताव द्वारा इस पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की गई कि अपनी चर्चा में पवित्रतम माने जाने वाले दिगम्बर जैन मुनिराजों में कतिपय मुनि आज श्रमणाचार विरोधी आचरण में लिप्त होने के आरोप के भाजन हो रहे हैं, तथा आचार्यों एवं मुनिराजों से इस विषम स्थिति की ओर तुरन्त ध्यान देने का निवेदन किया गया और मुनि संघ के लिये आगम में निर्धारित मर्यादाओं का भावानुरूप से पालन करने व कराने का आग्रह किया गया तथा यह भी अनुरोध किया गया कि वे अपने प्रवचनों में अन्य मतों के आराध्य देवों के विषय में चुभती, अपमान जनक बातें न करें। प्रस्ताव में **श्रावकों से भी अनुरोध किया गया कि वे मुनि धर्म के यथार्थ स्वरूप का ही पोषण करें और श्रावकाचार का पालन करते हुए भौतिक लालसाओं हेतु तन्त्र-मन्त्र के फेर में न पड़ें।**

इस प्रस्ताव की सदाशयता तो असंदिग्ध है पर इससे श्रमण शिथिलाचार में कोई कमी आएगी, इसमें हमें भारी संशय है। यदि शिथिलाचार में लिप्त साधु मात्र अनुनय-विनय से अपनी चर्या में संशोधन करने वाले होते तो स्थिति में कब का सुधार हो गया होता। आज न केवल कतिपय मुनि ही वरन् तथाकथित आचार्य भी शिथिलाचार में अग्रणी हो रहे हैं। अनुनय-विनय मानने की तो बात ही क्या, जोर-जबरदस्ती, अपमान, मारपीट का भी उन पर कोई असर होता दिखायी नहीं पड़ता। मुजफ्फरनगर में विगत वर्ष चातुर्मास रत रहे आचार्य श्री इसका ताजा-तरीन उदाहरण हैं। ऐसे मुनि/आचार्य अपने को किसी से हीन नहीं समझते तथा यदि

कोई अन्य आचार्य/मुनि उनकी आलोचना करने का किंचित साहस भी करे तो वे उसके विषय में नाना प्रवाद प्रचारित करने में भी नहीं चूकते। अनुनय-विनय का असर उन आचार्य श्री पर क्या हुआ जिन्होंने जांच आयोग द्वारा शील स्खलन के दोषी करार दिये जाने पर आयोग के निष्कर्षों को मानने से इन्कार करते हुए अपने को निर्दोष घोषित किया तथा किसी भी प्रकार का प्रायश्चित लेने से इन्कार कर दिया ? उन गणधराचार्य श्री पर भी क्या असर हुआ जिन्होंने गर्भपात कराई अपनी प्रिय शिष्या आर्यिका जी को (जो उन्हें 'पापा' कह कर सम्बोधित करती है) अपने संघ से पृथक करने की साधारण मांग को भी स्वीकार नहीं किया ? उन बालाचार्य जी पर भी क्या असर हुआ जो समाज के विद्वत् जनों की सब अनुनय-विनय ठुकरा कर नग्न मुनि वेश में ही भट्टारक पद पर अभिषिक्त हो गये ? और भी विडम्बना यह है कि समाज के कुछ मान्य नेता ऐसे साधुओं के परोक्ष या प्रत्यक्ष समर्थन में खड़े हो जाते हैं। शास्त्रोक्त श्रावकाचार पालन करने वालों की संख्या आज अल्प ही रह गई है और दिन-प्रतिदिन आगे इसमें ह्रास होता जा रहा है।

हमारी समझ में शिथिलाचार पर प्रभावी रोकथाम लगाने के लिये प्रत्येक नगर/कस्बे में प्रबुद्ध श्रावकों द्वारा एक जागृति मंच गठित किया जाना चाहिए जो आगम-विरुद्ध चर्या करने वाले साधुओं को शिथिलाचारी प्रवृत्तियों को छोड़ने या दीक्षा छेद करने के लिए बाध्य करे। परिषद की स्थानीय इकाईयां इसमें अहम भूमिका निभा सकती हैं।

इसी अधिवेशन में पारित किये गये एक अन्य प्रस्ताव द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों का जो जन्म से मरण तक आयोजित विभिन्न समारोहों में देखने को मिलती हैं, घोर विरोध किया गया तथा जन्म से मरण तक आयोजित कार्यक्रमों की एक आचार संहिता तैयार कर समाज के समक्ष प्रस्तुत कर क्रियान्वयन का निर्णय लिया गया।

हम इस प्रस्ताव का स्वागत करते हैं तथा इस ओर गम्भीरता पूर्वक ध्यान देने के लिए परिषद को बधाई देते हैं। समाज का

बहुसंख्यक समुदाय आर्थिक दृष्टि से निम्न-मध्यम वर्ग में ही आता है। समाज के कतिपय धनिकों द्वारा विवाह आयोजनों पर अनाप-शनाप व्यय, विवाह भोजों में व्यंजनों की असीमित-सी होती जा रही संख्या, और पंडालों की महंगी साज-सज्जा में वैभव का चकाचौंध पैदा करने वाला प्रदर्शन देखा-देखी में अन्यों को भी इन आयोजनों पर अपनी सामर्थ्य से कहीं अधिक व्यय करने को विवश कर देता है। दहेज का अभिशाप अलग सुरसा की बेल की तरह निरन्तर बढ़ता जा रहा है। परिषद ने अपने प्रारम्भिक दौर में विभिन्न सामाजिक रस्मों के लिए एक दस्तूर-ए-अमल जारी कर सभी आवश्यक रस्मों पर व्यय की एकरूपता कायम करके धनिक-निर्धन की खाई मिटाने का सफल प्रयास किया था। उस समय के परिषद के नेताओं एवं समर्पित कार्यकर्त्ताओं ने दिल्ली व पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गांव-गांव, कस्बे-कस्बे में अपने ही व्यय से घूम कर समाज से उस दस्तूर-ए-अमल को अपनाने की जोरदार अपील की थी जिसके फलस्वरूप उस अंचल की प्रायः सभी बस्तियों की पंचायतों ने उसे पूर्ण रूप से अपना लिया था। वर्तमान में कुछ वर्ष पूर्व परिषद द्वारा दिये गये नारे "दिन में विवाह, दिन में फेरे" का जहां-जहां समाज सेवियों द्वारा प्रचार किया गया, विवाह समारोहों में हो रहे अपव्यय को काफी सीमा तक रोकने में कारगर सिद्ध हुआ है। हम आशा करते हैं कि प्रस्तावित आचार संहिता के समाज में अपनाए जाने के लिए भी उसी प्रकार पूरी लगन के से प्रयास किया जायेगा जैसे कि उस समय दस्तूर-ए-अमल के लिये किया गया था तथा परिषद के सभी पदाधिकारियों एवं सदस्यों को उस पर अमल करना अनिवार्य कर दिया जायेगा। आचार संहिता में यदि दहेज निषेध का भी समावेश कर दिया जाय तो यह सचमुच ही समाज सुधार का एक बड़ा क्रान्तिकारी कदम होगा।

——

जीव दया

Prevention of Cruelty to Animals

Prevention of cruelty to animals is the simplest demonstration of the principle of **ahimsa**—non-violence in one's practical conduct. Although the Constitution of India prohibits the slaughter of cows and calves, and the Prevention of Cruelty to Animals Act mandates kindness, the conditions are horrible in this country. And, all the same, it is the land which gave out the message of kindness to all living beings through great apostles of Ahimsa like the Jain Tirthankara Mahavira, the Buddha and many saints, philosophers and thinkers, it is where the cow is a reverred creature, and it has a significant number of Ahimsite Jains and Vaishnavas.

We have received letters from Ankur Jain (15614 W 139th Ter, Olathe KS 66062, U.S.A.) and Ingrid Newkirk (President, People for the Ethical Treatment of Animals, 501 Front Street, Norfolk, VA 23510), drawing attention to the horrible and pathetic conditions prevailing in India. Newkirk pinpoints—

"Indian cattle, including babies, the sick and the old are driven on a death march to distant slaughterhouses—in the stifling heat, with no food or water. Chili peppers are smeared into their weeping eyes and their tails are deliberately broken when they fall from exhaustion and injury. Once they reach the slaughterhouse, they are confronted with abuses too horrific for words. Indian law forbids causing suffering to animals, prohibits the slaughter of cows and calves, and sets stringent

transport rules —yet these atrocities continue at the hands of the Indian meat and leather industry.

The terrible treatment of the cattle is not just India's problem. They are slaughtered because of the West's influence. Anyone who buys beef in Pakistan, Malaysia and the Arab states and anyone who buys leather in Europe and North America may be part of the problem "

Ankur Jain joins in—

"Let me tell you about the horrible treatment of Indian cows whose leather is manufactured and sold in India. The cows are viewed as 'products', not sentient beings. They are joined together by strings run painfully through their noses. They are kept in temperatures of over 100 degrees without water or shade. They are marched 50 to 100 miles to designated loading areas. They are not allowed to rest or eat. They are beaten and their tails are twisted to keep them moving. The trucks are crammed full of the animals, sometimes five cows in the space meant for one. Some of the drivers are actually Jains ! During the bumpy trip, cows inadvertently gouge each other and break their horns and nose rings. Blood and faeces splatter all over the animals. Injured cows and those incapable of movement are left to die where they lay. Before the final slaughter, their feet are tied together and they are thrown onto their sides on the dirty floor. Sometimes, workers saw through the cows with dull knives leaving the fully conscious animals to bleed slowly to death. Many cows are skinned alive. All of this horrible suffering, all in the name of meat and leather. The atrocities stated are just scratch-

ing the surface of the cruelty that our sacred cows now face."

And adds—

"Let it be understood that wearing leather is the same as eating meat. They both produce a demand for the slaughter of cows. Once this demand is gone, cattle slaughtering will go out of business. The leather industry increases the value of the cow, thus minimizing the need to treat the animals humanely."

Dr. Chiranjee Lal Bagra (editor, **Disha Bodh**, 46 Strand Road, 3rd Floor, Calcutta-700007) is doing commendable work in waging legal battle against licensing of slaughter houses by the government. The Jains in India and abroad, and organisations like the PETA, should strengthen the hands of Dr. Bagra and other philanthropists who are fighting for closing of the abettoires like the Al-kabir and Morigram, the avowed object of which is to supply **halal** beef to the West Asian Muslim countries. And let it be understood that **halal** is the cruelest method of slaughtering an animal, cutting it slowly to make it bleed to death, writhing in pain and agony for the longest duration possible.

—Shashi Kant

——

रिपोर्ट :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश

दिनांक २ जनवरी, २००० ई०, को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ, में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, की साधारण सभा की बैठक में समिति नियमावली के नियम ९ व १० के प्राविधानों के अनुसार, समिति के पदाधिकारियों और प्रबन्ध समिति के सदस्यों का निर्वाचन सर्वसम्मति से सम्पन्न हुआ और आगामी ३-वर्षीय कार्यकाल के लिए प्रबन्ध समिति का निम्नवत गठन हुआ—

अध्यक्ष : श्री लून करण नाहर जैन
उपाध्यक्ष : श्री कन्हैया लाल जैन
श्री राज कुमार जैन
महामंत्री : श्री अजित प्रसाद जैन
संयुक्त मंत्री : डा० शशि कान्त
उप मंत्री : श्री नरेश चन्द्र जैन
श्री रमा कान्त जैन
कोषाध्यक्ष : श्री बिजय लाल जैन
सदस्य, प्रबन्ध समिति—
श्री नेमिचन्द्र जैन
डा० विनय कुमार जैन
श्री महावीर प्रसाद जैन पाटनी
श्री संदीप कान्त जैन
श्री कैलाश भूषण जिन्दल
डा० पूर्ण चन्द्र जैन
श्री रोहित कुमार जैन
श्री महेन्द्र प्रसाद जैन
श्री किशन चन्द जैन
श्री सुरेन्द्र नाथ जैन
श्री अजय जैन कागजी

—शशि कान्त, संयुक्त मंत्री

श्री अजित प्रसाद जैन का अभिनन्दन

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, के संस्थापक-महामन्त्री श्री अजित प्रसाद जैन ने १ जनवरी, २००० ई०, को ८३वें वर्ष में प्रवेश किया। समिति की दिनांक २ जनवरी, २००० ई०, को सम्पन्न साधारण सभा की बैठक में श्रद्धेय श्री जैन का उनके ८३वें वर्ष में प्रवेश पर और शोधादर्श के प्रधान सम्पादक के रूप में जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिये अजमेर में दिनांक २० नवम्बर, १९९९ ई०, को उपाध्याय ज्ञानसागर जी के सानिध्य में श्रुत संवर्द्धन संस्थान तथा प्राच्य श्रमण भारती द्वारा 'आचार्य विमलसागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-९९' से सम्मानित किये जाने के लिये समिति के सभी सदस्यों द्वारा भावभीना अभिनन्दन किया गया। समिति के अध्यक्ष श्री लूनकरण नाहर जैन ने तिलक लगा कर, श्रीफल प्रदान कर और शाल ओढ़ा कर श्री अजित प्रसाद जी का अभिनन्दन किया, उपाध्यक्ष श्री कन्हैया लाल जैन ने रौप्य मुद्रा से अभिनन्दन किया, और कोषाध्यक्ष श्री बिजय लाल जैन ने पुष्पहार पहना कर अभिनन्दन किया। डा० विनय कुमार जैन ने अभिनन्दन-पत्र का वाचन किया और उसे अध्यक्ष ने श्री अजित प्रसाद जी को सादर समर्पित किया।

डा० शशि कान्त ने श्री अजित प्रसाद जी का, समिति के प्रति उनकी मूल्यवान सेवाओं का उल्लेख करते हुए, संक्षिप्त परिचय दिया और यह भी अवगत कराया कि चूंकि अस्वस्थता के कारण वह अजमेर पुरस्कार समारोह में सम्मिलित नहीं हो सके थे, पुरस्कार चयन समिति के अध्यक्ष, प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन, ने पुरस्कार व प्रशस्ति-पत्र आदि लाकर दिनांक ८ दिसम्बर, १९९९, ई० को श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा के लखनऊ कार्यालय में श्री अजित प्रसाद जैन को प्रदान किये थे और महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी ने शाल ओढ़ाकर उनका अभिनन्दन किया था।

यह उल्लेखनीय है कि श्रद्धेय अजित प्रसाद जी विभिन्न शासकीय दायित्वों का निर्वहन करते हुए अपने संवर्ग में तत्समय उपलब्ध सर्वोच्च पद (उप सचिव, उत्तर प्रदेश शासन) से वर्ष १९७६ ई० में सेवा निवृत्त हुए थे और तदनन्तर वह विभिन्न सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापों और पत्रकारिता में सक्रिय रहे। जैन समाज की सभी अखिल भारतीय संस्थाओं में उनका बहुमान रहा है। तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, को सन् १९७६ ई० में संस्थापन से ही श्रद्धेय अजित प्रसाद जी का मार्गदर्शन और सक्रिय योगदान प्राप्त रहा है, और यद्यपि विगत दस वर्षों से वह हृदय रोग से गम्भीर रूप से पीड़ित रहे हैं, उनकी कर्मठता और सूझ-बूझ से समिति के कार्यक्रमों का सुचारू संचालन होता रहा है।

सभी सदस्यों ने श्री अजित प्रसाद जी की छत्रछाया बने रहने की कामना की। श्री रमा कान्त जैन ने काव्य पाठ किया। श्री लूनकरण नाहर जैन, कु० हेमा सक्सेना, श्रीमती मंजरी जैन, श्रीमती मोहिनी जैन, श्रीमती सौम्या जैन और श्रीमती निधि जैन ने सुन्दर भजन प्रस्तुत कर समारोह को रससिक्त किया। श्री नरेश चन्द्र जैन ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए सभी समागत के प्रति आभार व्यक्त किया।

—रमा कान्त जैन

इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की जन्म-जयन्ति

दिनांक ६ फरवरी, २००० ई०, को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ, में इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि श्रद्धेय डॉ० ज्योति प्रसाद जैन के ८९वें जन्म दिन पर एक स्मृति-गोष्ठी वयोवृद्ध विद्वान लेखक एवं शोधादर्श के प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। श्री कैलाश भूषण जिन्दल मुख्य अतिथि थे और श्री रमा कान्त जैन ने गोष्ठी का संचालन किया।

अध्यक्ष द्वारा श्रद्धेय डॉक्टर साहब के चित्र पर मालार्पण, मुख्य अतिथि द्वारा दीप-प्रज्वलन और चि० मैत्रेय एवं कु० मैत्री

द्वारा संस्कृत में मंगलाचरण से गोष्ठी प्रारम्भ हुई। श्रद्धेय डॉक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' और 'जय महावीर नमो' का सामूहिक गायन श्रीमती मंजरी जैन, श्रीमती आशा जैन, श्रीमती मोहिनी जैन, श्रीमती सौम्या जैन और श्रीमती निधि जैन ने किया।

अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए डॉ० शशि कान्त ने बताया कि विद्यानुराग के जो संस्कार श्रद्धेय डाक्टर साहब ने संजोये थे, वे उनकी सन्तति में अभी जीवित हैं, और यह उनकी विशिष्ट उपलब्धि कही जा सकती है। डॉक्टर साहब की कृतियों ने उन्हें अमर बनाया है, और उनकी पुस्तक **भारतीय इतिहास : एक दृष्टि** तथा **Religion and Culture of the Jains** के क्रमशः तृतीय एवं चतुर्थ संस्करण अभी हाल ही में भारतीय ज्ञानपीठ ने प्रकाशित किये हैं जो उनकी लोकप्रियता की द्योतक हैं। दूसरी कृति को विदेशों में भी बहुमान मिला है।

तदनन्तर गोष्ठी में उपस्थित डॉ० पूर्णचन्द्र जैन, डॉ० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, श्री रतनचन्द्र गुप्त, श्री नरेश चन्द्र जैन, डॉ० वृषभ प्रसाद जैन, श्री धरणेन्द्र कुमार जैन, डॉ० शैलेन्द्र नाथ कपूर, डॉ० विजय कुमार जैन, श्री गया प्रसाद तिवारी 'मानस', डॉ० ओम प्रकाश त्रिवेदी, डॉ० पद्माकर द्विवेदी, आचार्य राज किशोर शास्त्री, श्री कैलाश भूषण जिन्दल और अध्यक्ष श्री अजित प्रसाद जैन ने अपने उद्गारों और डॉक्टर साहब से सम्बन्धित अपने संस्मरणों आदि से उनका पुनीत स्मरण किया। डॉक्टर साहब की रचनाओं से विदित होता है कि उनका ज्ञान गहन था, और वह क्रियायुक्त भी था। उनमें 'गुणिषु प्रमोदं' की भावना, सज्जनता और धर्म के प्रति निष्ठा थी। सभी वक्ताओं ने डॉक्टर साहब के सरल स्वभाव और विद्याभ्यास हेतु औरों को प्रेरणा देने के गुण की सराहना की।

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' और डॉ० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' ने उनकी स्मृति में अपनी काव्याञ्जलियां अर्पित कीं। चि०

(शेष पृष्ठ ५६ पर)

जिज्ञासा

श्री णमोकार मन्त्र

श्री शान्तिलाल के० शाह :

'णमोकार मन्त्र' प्राकृत भाषा का शब्द है और इसका संस्कृत रूपान्तर 'नमस्कार मन्त्र' होता है। प्रारम्भ में यह मंगलाचरण के रूप में प्रयुक्त होता था।

'मन्त्र' की व्युत्पत्ति है—'मनः त्रायते इति मन्त्रः'। जब कोई संकट या विपत्ति आती है तब मनुष्य अपने संकट से उबरने के लिये अपने इष्टदेव का स्मरण करता है। यही मन्त्र की पूर्वपीठिका है।

दिगम्बर आम्नाय में कषायप्राभृत में णमोकार मन्त्र का मंगलाचरण के रूप में प्रयोग हुआ है और श्वेताम्बर आम्नाय में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा इसका मंगलाचरण के रूप में प्रयोग किया गया है।

इस गाथा में पंच-परमेष्ठि के रूप में अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमस्कार किया गया है : णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। जिस रूप में अब यह प्रवृत्त है और इसे 'नाम जप' के रूप में मन्त्र का रूप दे दिया गया है, उससे निम्नलिखित शंकाएं उपस्थित होती हैं :—

(१) जब यह प्रारम्भ में मंगलाचरण था तो इसे मन्त्र का रूप कब दिया गया ?,

(२) मन्त्र रूप दिये जाने से इसका महत्व और महत्ता कब से बढ़ी ?, और

(३) इस मन्त्र में ऐसी कौन सी शक्ति या रसायन है जिससे श्रावकों के सब विघ्न दूर हो जाते हैं, उनको ऐहिक सुख-सम्पदा प्राप्त हो जाती है और पुण्य प्राप्ति होती है तथा स्वर्ग भी मिलता है ?

डा० शशि कान्त :

श्री शाह की उपर्युक्त शंकाएं समीचीन हैं और शास्त्र-मर्मज्ञ विद्वानों से यह निवेदन है कि वे इनका समाधान देने की कृपा करें।

पुरातात्त्विक आधार पर यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक उल्लेखों से पहले ईसा-पूर्व दूसरी शती तक इस गाथा में मात्र दो ही पद थे—नमो अरहंतानं, नमो सव-सिधानं। इस गाथा का इस रूप में अभिलिखित उल्लेख उड़ीसा में भुबनेश्वर के पास उदयगिरि पर स्थित हाथीगुम्फा पर उत्कीर्ण, लगभग १७२ ईसा-पूर्व के, कलिंगराज खारवेल के शिलालेख में प्राप्त होता है। इस शिलालेख में भी यह प्रारम्भ में ही है और मंगलाचरण के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। उक्त शिलालेख में 'संघयन', अर्थात् संघपति आचार्य, का श्रमण, ज्ञानी और तपस्वी-ऋषि के बाद उल्लेख किया गया है जो यह सूचित करता प्रतीत होता है कि 'णमोकार मन्त्र' का वर्तमान स्वरूप, जिसमें अर्हन्त और सिद्ध के बाद आचार्य और तत्पश्चात् उपाध्याय तथा साधु को रखा गया है, उक्त शिलालेख के उपरान्त किसी समय स्थिर हुआ। साहित्यिक उल्लेख ईसा की प्रथम शताब्दी से पहले के उपलब्ध नहीं हैं। (दृष्टव्य, The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka, 2nd ed., pp. 65-68)

——

(पृष्ठ ५४ का शेष)

मैत्रेय और कु० मैत्री के भजन व कण्ठ-धनी श्री घनानन्द पाण्डे 'मेघ' के गीतों—'कहाँ गये वे लोग जो हमें मोह लिया करते थे' व 'कोई न कोई गीत कहूँगा, दुश्मन को भी मीत कहूँगा'—ने जहाँ गोष्ठी के वातावरण को सरस किया, 'ठहाका श्री' अनिल बाँके तथा श्री रमा कान्त जैन ने अपनी हास्य-व्यंग्य क्षणिकाओं से ठहाके लगवाये और श्रोताओं को मनमुग्ध किया।

—अंशु जैन 'अमर'

साहित्य सत्कार

नव प्रभात (प्रथम भाग)—वह महकता गुलाब—पृष्ठ ९४, मूल्य रु० ५/-
नव प्रभात (द्वितीय भाग)—आज की आवश्यकता-हमारा धर्म—पृ० २२२, मूल्य रु० १२/-
नव प्रभात (तृतीय भाग)—संकट आने नहीं देंगे—पृ० ५०४, मूल्य रु० ११/-
—सम्पादन/लेखन/संकलन—बाल ब्र० अजित सोंरई; प्रकाशक—अमर ग्रन्थालय, तुकोगंज, इन्दौर

सम्पूर्ण पुस्तक ९ खण्डों में विभाजित है तथा प्रत्येक भाग (जिल्द) में तीन-तीन खण्डों के संकलन प्रस्तुत किये गये हैं। प्रथम भाग के "संप्रक्षालन" खण्ड में प्रातः स्मरण पाठ, देव दर्शन स्तुति, तथा, तीर्थ वन्दना आदि ५ छत्तीसियां दी गई हैं, 'परमेष्ठी' खण्ड में पंच-परमेष्ठी तथा महामन्त्र सम्बन्धी ९ छत्तीसियां दी गई हैं, तथा "बालकीय" खण्ड में वीर प्रभु प्रार्थना सहित कुछ बालकोपयोगी रचनाओं को प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक के दूसरे भाग में संकलित "प्रौढ़", "प्रबुद्ध" एवं "रक्षणीय" नामक तीन खण्डों में जैन धर्म सम्बन्धी प्रारम्भिक जानकारियां प्रश्नोत्तर शैली में दी गई हैं।

पुस्तक के तृतीय भाग में प्रस्तुत अन्तिम तीन खण्डों—"वाचनक", "आनन्द प्रद" तथा "संप्रसादन" में सामायिक-प्रतिक्रमण-आलोचना, विधि एवं पाठ आदि दिये गये हैं।

सन्त शिरोमणि पू० आचार्य श्री विद्यासागर म० के सुशिष्य विद्वान ब्रह्मचारी अजित सोंरई जी सुकवि भी हैं तथा पुस्तक में उन्होंने विभिन्न विद्वानों एवं कवियों सहित अपनी भी कतिपय रचनाओं का समावेश किया है। पुस्तक धर्म में रुचि रखने वाले बालक, युवा व प्रौढ़—सभी वर्गों के श्रावकों के लिए उपयोगी है।

जैन विद्या गोष्ठी—संयोजक—श्री दुलीचन्द जैन 'साहित्य रत्न'; प्रकाशक—भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ, जैन स्थानक, ४६ बर्किट रोड, टी नगर, चेन्नई-६०००१७; पृ० १४२; मूल्य रु० १००/-

आगम-विज्ञ श्रद्धेय श्री सुमन मुनि जी के वर्ष १९९८ के चेन्नई में सम्पन्न हुए चातुर्मास में स्थानीय श्वेताम्बर स्थानकवासी संघ द्वारा एक द्वि-दिवसीय जैन विद्या गोष्ठी का आयोजन किया गया था। सुप्रसिद्ध लेखक श्री दुलीचन्द जैन ने उक्त गोष्ठी में पठित व्याख्यानों का संकलन इस पुस्तक में किया है। पुस्तक पठनीय एवं ज्ञानवर्द्धक है।

जैन आगम प्राणी कोश—सम्पादक—मुनि श्री वीरेन्द्र कुमार जी; प्रकाशक—जैन विश्व भारती, लाडनू-३४१३०६; १९९९; पृ० १२०; मूल्य रु० २५०/-

जैन आगमों में उपलब्ध द्विन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के लगभग सभी प्राणियों की पहचान कर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के सन्दर्भ में उसकी तुलनात्मक प्रस्तुति इस कोश में की गई है। इस बहुश्रम-साध्य प्रस्तुतिकरण के लिए विद्वान मुनि जी का प्रयास सराहनीय है।

Ujjwala-Wani—Lecturer–Mahasatee Shree Ujjwala Kumariji; Editor—Mahasatiji Dr. Shri Dharamshila ji ; pub. Ujjwala Dharam Trust, Mumbai; 1999; pp. 256; Price Rs. 50/-

This is an English version of the religious discourses given by the learned Sthanakvasi-Jain lady Sant Mahasatiji Shri Ujjwala Kumariji. Her sermons are couched in simple language, and are interspersed with folk-tales for elucidating the theme. The Jaina religious doctrines have been explained in such a simple way that everybody can comprehend them easily. The book is particularly useful to the English speaking people who wish to acquaint themselves with Jaina doctrines.

श्रावक धर्म—ले०–महासती श्री उज्जवल कुमारी जी; प्रकाशक–उपरोक्त; १९९८; पृ० १७६; मूल्य रु० ३०/-

इस पुस्तक में विदूषी महासती जी ने श्रावक के १२ व्रतों का कथाओं व सत्य घटनाओं के प्रसंग से हृदयग्राही शैली में विशद विवेचन किया है। पुस्तक मननीय व संग्रहणीय है।

पनपता मिथ्यात्व—ले० व प्रकाशक—श्री जितेन्द्र कुमार जैन (आलू वाले), मेरठ; २०००; पृ० ६२; मूल्य मिथ्यात्व त्याग नियम

शाकाहार—मानवता और संस्कृति—ले० व प्रकाशक—वही; २०००; पृ० २१६; मूल्य शाकाहारी जीवन

आत्मभाव—तत्त्वज्ञान—ले० व प्र०—वही; १९९६; पृ० ८८; मूल्य कुछ ग्रहण कर लो

उपरोक्त तीनों पुस्तकों के लेखक, धर्म-मर्मज्ञ, सुश्रावक श्री जितेन्द्र कुमार जी ने **पनपता मिथ्यात्व** में जैन समाज में व्याप्त धर्म-मूढ़ता व देव-मूढ़ता जन्य मिथ्यात्व के स्वरूप को सरल भाषा में सोदाहरण समझाते हुए उन से बचने की प्रेरणा दी है।

शाकाहार पुस्तक में सराकोद्धारक पू० उपाध्याय श्री ज्ञान सागर म० के इस विषयक आलेख सहित इस्लाम, ईसाई, हिन्दू, सिख व बौद्ध धर्म के धर्म-ग्रन्थों से उद्धरण देते हुए यह सिद्ध किया गया है कि सभी धर्मों में जीव दया का उपदेश दिया गया है तथा हिंसा को किसी धर्म में मान्यता नहीं दी गई है, मांसाहार अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण है, तथा भारतीय संस्कृति व मानवता के विरुद्ध है।

आत्मभाव—तत्त्वज्ञान पुस्तक में जैन धर्म विषयक कतिपय बिन्दुओं पर विभिन्न रचनाओं के माध्यम से (जिनमें से कुछ लेखक की हैं, कुछ अन्यों की तथा कुछ शास्त्रों से संकलित हैं) जानकारी उपलब्ध कराई गई है। रचनाओं की विषय-वस्तु में कोई तारतम्यता नहीं है।

खरा सो मेरा—ले० डा० सुदीप जैन; प्रकाशक—कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली-६७; १९९९; पृ० २४; मूल्य रु० ५/-

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने दिगम्बर जैन आगम ग्रन्थों का भाषा-शास्त्र एवं सिद्धान्त-शास्त्र की दृष्टि से सूक्ष्म तुलनात्मक

अध्ययन करके प्रतिपादित किया है कि दिगम्बर जैन आगमों की भाषा शौरसेनी प्राकृत ही है।

इतिहास की अमर बेल ओसवाल (ओसवाल जाति का इतिहास—दो खण्डों में)—ले०—श्री मांगी लाल भूतोड़िया; प्रकाशक—प्रियदर्शी प्रकाशन, लाडनू; खण्ड-१ १९८८, खण्ड-२ १९९२; पृ० ४१० + ४६०; मूल्य रु० ३५०/-

पुस्तक के प्रथम खण्ड में जैन धर्म का इतिहास, ओसवाल जाति की उत्पत्ति विषयक विशद विवेचन, गोत्र विकास, ओसवाल जाति के जैनाचार्य, जैन तीर्थ एवं ओसवाल, ओसवाल इतिहास पुरुष तथा शासन द्वारा सम्मानित ओसवालों का परिचय दिया गया है। द्वितीय खण्ड में मुख्य रूप से ओसवाल जाति के गोत्रों का विस्तार से वर्णन किया गया है तथा समाज व संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान करने वाले ओसवालों का वर्णन किया गया है।

ओसवाल जाति के इस सर्वांगीण विशाल इतिहास ग्रन्थ में जो विविध विषयक जानकारियां उपलब्ध कराई गई हैं उनके परिशीलन से इस ग्रन्थ के निर्माण में लगे लेखक के अकथ परिश्रम, अध्यवसाय व जाति-प्रेम के दर्शन होते हैं। यद्यपि श्री पूर्णचन्द्र नाहर सहित प्रायः सभी विख्यात पुरातत्त्वविद् एवं इतिहासवेत्ता पार्श्वनाथ सन्तानीय उपकेशगच्छीय आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा उपकेशपुर या ओसिया के राजपूतों का धर्मान्तरण करके ओसवाल जाति की उत्पत्ति की घटना वि० स० ५०० व १००० के बीच घटित हुई मानते हैं, विद्वान लेखक ने अनुश्रुति एवं भाटचारणों के अभिलेखों के आधार पर इस घटना का समय वि० स० पूर्व ४०० वर्ष माने जाने का तार्किक प्रयास किया है। ग्रन्थ पठनीय एवं संग्रहणीय है।

अमृत ज्ञान माला—ले० व प्रकाशक—श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्ति प्रिय', १३३, जम्बू द्वीप, हस्तिनापुर (मेरठ); १९९७; पृ० २४

घर-परिवार का मोह त्याग कर श्री हस्तिनापुर जी तीर्थ क्षेत्र के धर्ममय शान्त वातावरण में अपनी जीवन संध्या का धर्म ध्यान-

वैयावृत्य में आनन्दपूर्वक सदुपयोग कर रहे स्वाध्याय-रसिक विद्वान लेखक ने पू० गणिनी श्री ज्ञानमती माता जी के ग्रन्थों के आधार से १०८ सरल सूत्रों में जैन धर्म का सार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह लघु पुस्तिका सभी जन साधारण के लिए उपयोगी है।

जैन महाभारत—ले०—गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती जी; प्रकाशक-श्री दि० जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर; १९९९; पृ० ६४; मूल्य रु० १०/-

इस लघु पुस्तिका में विदूषी आर्यिका जी ने भट्टारक शुभचन्द्राचार्य विरचित **पांडव पुराण के आधार पर महाभारत कथा** के जैन संस्करण का सार-संक्षेप प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार महाभारत का युद्ध उस युग के दो महानायकों—मगध सम्राट जरासंध तथा नारायण श्री कृष्ण के बीच दीर्घकालीन संघर्ष की अन्तिम कड़ी के रूप में लड़ा गया था जिसमें कौरव जरासंध के पक्ष में तथा पांडव श्री कृष्ण के पक्ष में लड़े थे तथा जिसका अन्त श्री कृष्ण द्वारा जरासंध के वध के साथ हुआ था। पुस्तिका बालोपयोगी है।

सराक ज्ञानाञ्जलि काव्य—रचयिता—श्री निहालचन्द सिंघई 'चन्द्रेश'; प्राप्ति—श्री शिखरचन्द जैन, डी-३०३, विवेक विहार, दिल्ली-९५; पृ० ६२

बंगाल-बिहार-उड़ीसा के कई जिलों के ग्रामीण अंचलों में लाखों की संख्या में निवास कर रहे सराकों की गणना आज आदिवासियों में की जाती है तथापि ये प्राचीन जैन श्रावकों के ही वंशज हैं। आज ये जैन धर्म से बिल्कुल कट चुके हैं, फिर भी इनके खान-पान, रहन-सहन, व्यवसाय आदि में जैन धर्म के अनेक संस्कार आज भी परिलक्षित होते हैं। यद्यपि दिगम्बर जैन समाज का ध्यान विगत ६५ वर्षों से सराक बन्धुओं के पुनरुत्थान की ओर गया हुआ है तथा सराक बालकों की धार्मिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य से कोडरमा में सन् १९३४ में एक दिगम्बर जैन विद्यालय की स्थापना भी की गई थी तथा उसके संस्थापक पं० कस्तूरचन्द जी ने सराक क्षेत्र में गांव-गांव घूम कर सराकों का कुछ सर्वेक्षण भी किया था तथा बाद में

साहु शान्ति प्रसाद जी की प्रेरणा से पं० बाबूलाल जी ने विस्तृत सर्वेक्षण किया था तथा उस क्षेत्र में छुट-पुट सेवा कार्यों का सिलसिला भी प्रारम्भ हो गया था, पर सराक जाति के पुनरुत्थान तथा जैन धर्म से पुनः जोड़ने के लिए सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित कार्यक्रमों को चलाने की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन देने का श्रेय पू० उपाध्याय श्री ज्ञानसागर मुनिराज को ही जाता है जिन्होंने विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए भी सराक क्षेत्र के ग्रामीण अंचलों में सतत विहार व चातुर्मास करके सराक बन्धुओं में अद्भुत धार्मिक चेतना जागृत की है।

इस पुस्तक में उपाध्याय श्री का जीवन वृत्त, उनकी गुरु परम्परा का परिचय तथा सन् १९९३ से १९९८ तक की पंचवर्षीय अवधि में सराक क्षेत्र के प्राचीन जिन मन्दिरों के जीर्णोद्धार तथा नवीन मन्दिरों के निर्माण, चिकित्सालयों तथा शिक्षण संस्थाओं की स्थापना तथा अन्य सेवा कार्यों का विवरण रोचक पद्यात्मक काव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक पठनीय है तथा इससे सराक क्षेत्र की प्रगति की उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है।

—अजित प्रसाद जैन

सुमन वाणी—प्रस्तोता—श्रीमती विजया कोटेचा; सम्पादक—डॉ० भद्रेश जैन; प्रकाशक—भगवान महावीर स्वाध्याय पीठ, एस० एस० जैन संघ, माम्बलम्, टी० नगर, चेन्नई-६०००१७; पृ० ११२+१५; १९९९; मूल्य स्वाध्याय

इस पुस्तक में श्रमणसंघीय सलाहकार मन्त्री मुनि श्री सुमन कुमार जी के प्रवचनों से सूक्तियाँ संकलित हैं। जड़, चेतन, आत्मा, परमात्मा, अनेकान्त, अहिंसा, अपरिग्रह, क्षमा, सन्तोष, पाखंड-आडम्बर-विरोध, टूटते-बिखरते परिवार, सुख-दुख, सरलता, सहजता आदि विविध विषयों का स्पर्श इन सूक्तियों में हुआ है। कलात्मक ढंग से जीवन जीने के हामी, पचास वर्ष से दीक्षा धारण किये हुए मुनिश्री अपनी आम्नाय के प्रति आस्थावान रहते हुए भी रूढ़िवादी नहीं हैं। उनका कहना है कि "कर्त्तव्य और दायित्वों से

भांग कर सामायिक नहीं की जाती", अर्थात् धार्मिक क्रियाओं से ऊपर मनुष्य के सामान्य कर्त्तव्य और दायित्व निर्वहन का महत्व है। ये सूक्तियां जहां गहन विषयों को सरल रूप में समझाने का प्रयास करती हैं, वहीं समाज में सद्भाव जगाने और व्यक्ति को अच्छा मनुष्य और नागरिक बनाने की प्रेरणा भी देती हैं। मुनिश्री के सचित्र परिचय और डॉ० भद्रेश कुमार के विद्वत्तापूर्ण प्राक्कथन के साथ प्रस्तुत यह संकलन आबालवृद्ध सबके लिए पठनीय और मननीय है। इसके लिए प्रस्तोता श्रीमती विजया कोटेचा साधुवाद की पात्र हैं।

केसर क्यारी के पचास वसन्त—रचयिता—डॉ० नरेन्द्र सिंह; प्रकाशक—यथा—उपरोक्त; १९९९; पृ० २६ + ६

यह लघु पुस्तिका उपर्युक्त श्री सुमन मुनि जी के दीक्षा-स्वर्ण-जयन्ति समारोह पर भावाञ्जलि स्वरूप प्रस्तुत खण्ड काव्य है जिसकी रचना स. घ. राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर, में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० नरेन्द्र सिंह ने, 'स्वकथ्य' के अनुसार, वारंगल और चेन्नई के मध्य रेल यात्रा के दौरान की थी। मुनिश्री से प्रभावित कवि ने उनके जीवन और व्यक्तित्व को अपने मन पर पड़ी छाप के आधार पर सरल भाषा में काव्य रूप में प्रस्तुत किया है।

'समीर'—सौरभ—लेखक—डॉ० पद्माकर द्विवेदी; प्रकाशक—बंधु प्रकाशन, महाराजगंज, बस्ती; ३-३-१९९५; पृ० १२० + २८; मूल्य रु० ५०/-

बहुमुखी प्रतिभा के धनी अपने पिताश्री स्व० रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' (जन्म २१-११-१९०२, निधन ३-३-१९६९) के जीवन, बहुआयामी व्यक्तित्व और कृतित्व को उजागर करने का श्लाघनीय कार्य व्यवसाय से चिकित्सक और प्रकृति से साहित्यकार रहे डॉ० पद्माकर द्विवेदी ने इस पुस्तक का प्रणयन करके किया हैं। आज के पाठक को ब्रिटिश दासता में जन्मे और स्वातन्त्र्योत्तर काल तक संघर्षशील रहे, राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत एक जुझारू अध्यापक और मनस्वी लेखक, सम्पादक एवं कवि को जानने-समझने के लिये

यह कृति अपने आप में एक है। इंग्लिश में एम० ए० श्री 'समीर' का हिन्दी साहित्य को अविस्मरणीय अवदान 'अवधी-कोश' की रचना है जिसकी तत्समय अनेक प्रख्यात भाषाविदों द्वारा सराहना हुई। समीर की भांति स्वच्छन्द प्रकृति के रहे 'समीर' अपने जीवन-संघर्ष में किसी एक स्थान पर अधिक दिन तक टिक कर नहीं रह सके। वह भारत के विभिन्न राज्यों में ही नहीं, अपितु सिक्किम और काबुल-कंधार के कालेजों तक अपनी धाक जमा आये थे। अपने ४२ वर्ष के अध्यापन काल में २ वर्ष (१९३९-४१) वह ओसवाल जैन हाई स्कूल, अजमेर, में भी प्रधानाचार्य रहे। अपनी हाजिर-जवाबी के लिये विख्यात 'समीर' जी का व्यक्तित्व आज भी प्रेरणास्पद है। हिन्दी जगत को यह पुस्तक प्रदान कर डॉ० पद्माकर ने पितृ-ऋण से उऋण होने का प्रयास तो किया ही है, इसमें उन्होंने अपनी रोचक लेखन शैली और अद्भुत शब्द-विश्लेषण क्षमता का परिचय भी दिया है, जिसके लिये वह साधुवाद के पात्र हैं।

हम गीत ही गुनगुनाते चले—रचनाकार—श्री गया प्रसाद तिवारी 'मानस'; प्रकाशक—हिन्दी परिषद, २२३, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-४; १९९७; पृ० ९२ + २०; मूल्य रु० ५०/-

उत्तर प्रदेश शासन में उप सचिव के पद से अवकाश-प्राप्त श्री गया प्रसाद तिवारी जी का यह छठा काव्य संकलन है। "गुन-गुनाता जग रहे जिनको युगों तक, मैं वही तो गीत गाना चाहता हूँ", इस अभिलाषा को अन्तस् में संजोये कवि 'मानस' जी के इस संकलन में उनके ५८ गीत हैं, जिनमें ४६ खड़ी बोली हिन्दी में, ५ हिन्दी-उर्दू मिश्रित भाषा में तथा ७ अवधी में हैं। ब्रजभाषा पर भी 'मानस' जी का अधिकार है। सदा प्रसन्नचित्त दीखने वाले तिवारी जी के इन गीतों में उनके अन्तर्मन में व्याप्त राष्ट्रप्रेम, मनुजता, प्रकृति-प्रेम और वर्तमान विसंगतियों के प्रति आक्रोश के दर्शन होते हैं। एक आस्थावान सनातनी होते हुए भी सभी धर्मों के प्रति सम्मान की भावना उनके हृदय में विद्यमान है, जैसा कि 'बोलो भारत माता की की जय' गीत की :

"रामचंद्र जैसे जन नायक, कृष्णचन्द्र से गीता गायक ।
महावीर जिनवर, गौतम से हुये विश्व को शान्ति प्रदायक ।।"

तथा 'हम गीत ही गुनगुनाते चले' की

"जो भी काबा मिला, झुक के सज्दा किया
जो शिवाला मिला, शिर नवाते चले ।
सूरतों, मूरतों की न झञ्झट रही
एक ही डोर सब ओर पाते चले ।।"

पंक्तियों से स्पष्ट है । भावनारूपिणी सरल-सुबोध भाषा में कवि ने इन सरस गीतों द्वारा माँ भारती को काव्य-सुमन अर्पित कर उनकी श्रीवृद्धि की है, जिसके लिये वह साधुवादार्ह हैं ।

हे विश्वम्भर—श्री सुरेन्द्र पाण्डेय; प्रकाशक—पं० विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी स्मारक समिति, उन्नाव; अक्तूबर १९९९; पृ० ४८; सहयोग राशि रु० १०/-

उत्तर प्रदेश शासन में संयुक्त सचिव के पद से अवकाश-प्राप्त श्री सुरेन्द्र नाथ पाण्डेय 'रञ्जन' की यह चौथी प्रकाशित काव्यकृति है । बांगरमऊ (उन्नाव जनपद) में ५ अक्तूबर, १८९९ ई०, को जन्मे, जीवन भर माटी से जुड़े रहे, एक महान स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी पं० विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी, जो सांसद रहते हुए १८ नवम्बर, १९५९ ई०, को दिल्ली में काल कवलित हुए थे, के जीवन, संघर्षों और व्यक्तित्व की यशोगाथा से कवि 'रञ्जन' ने प्रवाहपूर्ण सरल-सुबोध-भाषा-शैली में प्रस्तुत इस चरित काव्य के माध्यम से हमें परिचित कराया है । प्रस्तुति इतनी रोचक है कि पढ़ना प्रारम्भ किया तो अन्त तक पहुँच कर ही विराम लिया ।

अरुणिमा—रचनाकार—श्री वीरेन्द्र 'अंशुमाली'; प्रकाशक—भारती आलोक संस्थान, ५५४/ख/११३, विश्वेश्वर नगर, आलम बाग, लखनऊ-२२६००५; अप्रैल १९९६; मूल्य रु० ११०/-

इस काव्य कृति के पूर्वार्द्ध में कविवर 'अंशुमाली' की वाणी वन्दना से प्रारम्भ हो भारत सीमा प्रहरी नगेश, महारथी कर्ण का अन्तर्द्वन्द, कहलाओगे तभी महान, पांचाली की पुकार, युग पुरुष

छत्रपति शिवाजी, छलिया (विरह गीत) और ममतामयी प्रकृति नामक सात बड़ी रचनाएं हैं और उत्तरार्द्ध में श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्ध को लेकर रचा गया खण्ड काव्य 'प्रण की लाज' समाहित है। विविध भाव-भूमियों को स्पर्श करती 'अंशुमाली' की यह अरुणिमा पाठकों को भाव विभोर करने वाली है। सरल-सुबोध भाषा शैली में इसका प्रणयन हुआ है।

—रमा कान्त जैन

प्राचीन भारतीय देव-मूर्तियां—ले०—डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव; प्र०—संस्कृति विभाग, उ० प्र० शासन, लखनऊ; १९९८; पृ० ix + ११३ + ९८ चित्र

प्राचीन भारतीय इतिहास और कला के मर्मज्ञ विद्वान डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव ने प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन भारतीय देव-मूर्तियों का प्रतिमा लक्षण सम्बन्धी विवेचन दश अध्यायों में किया है। भारत में मूर्तिकला के प्रारम्भ और विकास का परिचयात्मक विवेचन प्रथम अध्याय में यह सूचित करता है कि प्रागैतिहासिक काल में ही मूर्ति शिल्प का बीजाकुर हो गया था और अब से लगभग ५००० वर्ष से ८०० वर्ष पहले तक के प्राप्त पुरावशेष देव-मूर्ति शिल्प के विकास की एक क्रमबद्धता इंगित करते हैं। अध्याय २ में भारतीय देव-मूर्तियों की पहचान के संयोजक तत्त्व दिये गये हैं यथा—उनकी खड़ी (स्थानक), बैठी (आसन) और लेटी (शयन) स्थिति, भाव-भंगिमाएं (हाथ और मुख की मुद्राएं), वाहन, आयुध, वेशभूषा और प्रभा मण्डल, तथा धर्म और सम्प्रदाय के अनुसार वर्गीकरण। अध्याय ३ से १० में क्रमशः वैष्णव, शैव, सौर, गणेश, देव-शक्तियों, लोकपाल आदि और यक्ष-नाग आदि अन्य देव-मूर्तियों, बौद्ध तथा जैन देव-मूर्तियों के प्रमुख लक्षणों का विवेचन किया गया है। प्राप्त कलावशेषों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में देव-मूर्तियों का मानव-आकार में बनाया जाना प्रायः २००० वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ और देव-समूह का विस्तार एवं सम्पूर्ण अलंकरण लगभग ८०० वर्ष पहले सम्पन्न हुआ। शिल्प के स्वरूप स्थितिकरण

(formalisation) और स्तरीकरण (standardisation) की दृष्टि से प्रणीत ग्रन्थों की रचना १५०० वर्ष से पहले नहीं जाती।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची में मूल ग्रन्थ, आधुनिक साहित्य और शोध पत्रिकाओं का उल्लेख है जो लाभकारी है। अंग्रेजी में प्रणीत पुस्तकों का विवरण यदि अंग्रेजी में ही दिया जाता तो अधिक समीचीन होता।

९८ कलावशेषों की फोटो अनुकृति अथवा रेखा-अनुकृति विवेचन को समझने में सहायक है और विशेष उपयोगी है।

लेखक ने अपने आमुख में पुस्तक के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए इंगित किया है कि संग्रहालयों में प्रदर्शित और देश भर में यत्र-तत्र अवस्थित देवी-देवताओं की मूर्तियों की पहचान के लिए सरल हिन्दी भाषा में एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता थी जिसमें विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियों के प्रमुख लक्षणों का सम्यक् विवेचन हो जो तत्सम्बन्धी चित्रों से सम्पुष्ट भी हो। डॉ० श्रीवास्तव अपने इस प्रयास में सराहनीय रूप से सफल हुए हैं। भारतीय देव-मूर्ति शिल्प को जन साधारण के लिए बोधगम्य करने के लिए डॉ० श्रीवास्तव और उत्तर प्रदेश शासन का संस्कृति विभाग साधुवाद के अधिकारी हैं।

पुस्तक सरकारी प्रकाशन है और स्पष्ट ही समूल्य है, परन्तु इस पर मूल्य का उल्लेख क्यो नहीं किया गया, यह स्पष्ट नहीं हो सका।

Museums and Museology in U.P.—by Dr. O. P. Agrawal and Mrs. Usha Agrawal; pub. Department of Culture, U. P. Government, Lucknow, 1998; pp. v + 78 + 50 photographs.

It is a survey report of the 11 museums maintained by the State Goverment in Uttar Pradesh. The State Museum at Lucknow, is the oldest, established in 1863 and shifted to its present building in Banarasi Bagh in the centenary year 1963. Next is the Government Museum at Mathura, established

in 1874 and shifted to its present building in 1930. Other museums chronologically are : Government Museum at Jhansi (1977-78), Pandit Govind Ballabh Pant Government Museum at Almora (1980), Rajkiya Baudh Sangrahalaya at Gorakhpur (1986-87), Ram Katha Sangrahalaya at Ayodhya (1988), Janapadiya Sangrahalaya at Sultanpur (1988), and Lok Kala Sangrahalaya at Lucknow (1989). The years of establishment of the Archaeological Museum at Kannauj, Sumitra Nandan Pant Vithika at Kausani; and Rajkiya Baudh Sangrahalaya at Kushinagar, are not given.

The survey gives an introduction and heads of collection, with a Status Report on display, light conditions, storage, documentation, conservation, educational services, publications, library, building, museum shop, and staff, with suitable recommendations. It is a welcome publication as the survey has been done by two experts in museology, conservation and preservation of antiquities.

संसार दर्पण—संकलनकर्ता—क्षु० विवेकानन्द सागर; प्र०—श्री दिगम्बर जैन प्रेम प्रचारिणी सभा, मंडी बामोरा (जि० सागर); १९९९; पृ० ४ + ६५; मूल्य रु० २०/-

अपने आमुख में डा० (कु०) आराधना जैन 'स्वतन्त्र' ने उल्लेख किया है कि क्षुल्लक जी ने आगम ग्रन्थों के गहन अध्ययन के उपरान्त कुल २१ चार्टों के द्वारा चतुर्गति में पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक अवस्था में जीव के भावों तथा आस्रवों का निरुपण इस पुस्तक में किया है और यह इस उद्देश्य से किया गया है कि अशुभ भावों/आस्रवों के कारण होने वाली भटकन को छोड़ कर शुभ में न अटकते हुए शुद्ध स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त करने में हम अग्रसर रहें।

संकलनकर्ता ने अपने 'आशीर्वाद' में एक महत्वपूर्ण तथ्य का

उद्घाट्न किया है कि उनके **गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज इस समय साक्षात तीर्थंकर का प्रतिनिधित्व करते हुए धर्म की डोर को सम्हाले हुए हैं**। इसी भावना के अनुरूप उन्होंने तथा अन्य अन्ध-श्रद्धालु भक्तों ने एक गम्भीर विषय को चार्टों, प्रश्नोत्तरी और पारिभाषिक शब्दकोश के द्वारा बोधगम्य करने वाली इस पुस्तक को आवरण पर आचार्य-श्री का बालीवुड स्टाइल में एक्ज्ही-बिशनिज्म-द्योतक नग्न चित्र देकर किसी भी सार्वजनिक पुस्तकालय में संग्रह और प्रदर्शन के लिए अयोग्य बना दिया, और न तो यह निजी पुस्तक सग्रह में संग्रहणीय ही रही और ना ही किसी विद्वान/जिज्ञासु को पठन हेतु, देने योग्य ही रह गई।

जैनविद्या, अंक १, १९९८—सं०—डॉ० किरण कुमार थपल्याल; प्र०—उत्तर प्रदेश जैनविद्या शोध संस्थान, द्वारा संगीत नाटक अकादमी, विपिन खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ; पृ० ४ + २०० + १६ प्लेट (३६ फोटो-अनुकृति)

१४ आलेख हिन्दी में और ८ आलेख अंग्रेजी में इसमें संग्रहीत हैं जिनमें से अधिकांश लेख संस्थान द्वारा २०-२१ अप्रैल, १९९७, को लखनऊ में आयोजित गोष्ठी में प्रस्तुत किये गये थे। चयन और प्रस्तुतिकरण विद्वान सम्पादक डॉ० किरण कुमार थपल्याल (लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास के सेवा-निवृत्त प्रोफेसर) ने एक अन्य सेवा-निवृत्त प्रोफेसर डॉ० रामाश्रय अवस्थी के सहयोग से किया है। संकलित लेख जैन-विद्या के विविध आयामों पर प्रकाश डालते हैं।

चूँकि गोष्ठी लखनऊ में आयोजित थी और संस्थान के अधिकारियों को हमारी तथा श्री रमा कान्त जैन की उपेक्षा करना उचित नहीं लगा, उन्होंने हम दोनों को अपने शोध पत्र प्रस्तुत करने को आमन्त्रित तो किया, और संस्थान के तत्कालीन कार्यकारी निदेशक डा० अरविन्द श्रीवास्तव ने दोनों लेखों का पुनरीक्षित आलेख भी प्रकाशन हेतु आग्रहपूर्वक आमन्त्रित किया था, परन्तु सम्पादक महोदय ने, पता नहीं क्यों, हमारे लेखों को पत्रिका में

स्थान देना आवश्यक नहीं समझा। संगोष्ठी की रिपोर्ट **शोधादर्श**-३२ में पृ० १५३-५५ पर प्रकाशित है। 'भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण में जैन सामग्री के उपयोग की आवश्यकता' पर श्री रमा कान्त जैन का शोध पत्र **शोधादर्श**-३३ के पृ० २४६-५० पर अवलोकनीय है।

हमारे शोध पत्र में खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख में उल्लिखित घटनाओं के सम्वत् का विवेचन था—**शोधादर्श** के इसी अंक में पृ० ३६-४४ पर श्री ज्ञानचन्द जैन का लेख और हमारी पुस्तक The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka (2nd ed., 2000 A.D.) इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

श्रमण, स्वर्ण जयन्ति वर्ष, अंक १०-१२ (अक्तू०-दिस० १९९९)—प्रधान सम्पादक—प्रो० भागचन्द्र जैन 'भास्कर', सम्पादक—डॉ० शिव प्रसाद; प्र०—पार्श्वनाथ विद्यापीठ, पो०आ० बी.एच.यू., वाराणसी-२२१००५; पृ० ६ + १९४; मूल्य रु० २५/-

यह अंक ८०-वर्षीय पं० अमृत लाल जैन शास्त्री (जन्म ७ जुलाई, १९१९ ई०) के प्रति श्रद्धाभाव से प्रो० भागचन्द्र जैन 'भास्कर' और पार्श्वनाथ विद्यापीठ द्वारा समर्पित है, यद्यपि इसे 'अभिनन्दन ग्रन्थ' की औपचारिकता से समन्वित नहीं किया गया है। इसमें पंडित जी के १६ गवेषणात्मक/विचार-प्रेरक लेख हैं और ४ संस्कृत में पद्य रचनायें हैं। ९ लेख डॉ० कमलेश कुमार जैन के सौजन्य से प्रकाश में आ सके हैं, ५ लेख **श्रमण** में प्रकाशित हैं और २ लेख **जैन-सन्देश-शोधांक**-१५ व १९ में प्रकाशित हैं।

पंडित जी **शोधादर्श** के पारखी पाठक हैं और निरन्तर अपने पत्रों से हमारा उत्साहवर्धन करते रहते हैं। ८० पार की वय में जैन विद्या की सेवा में तत्पर इन मनीषी को **शोधादर्श** परिवार भी अपना अभिनन्दन प्रस्तुत करता है, और प्रो० भास्कर एवं पार्श्वनाथ विद्यापीठ को उनको समर्पित **श्रमण** का यह अंक प्रकाशित करने के लिए साधुवाद देता है।

प्राकृत विद्या, वर्ष ११, अंक ३, (अक्तू०-दिस० १९९९)—मानद सम्पादक—डॉ० सुदीप जैन; प्र०—श्री कुन्दकुन्द भारती (प्राकृत भवन), १८-बी, स्पेशल इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-११००६७; पृ० ११२; मूल्य रु० १५/-

पृ० ९८ पर 'जिनागमों की मूल भाषा' शीर्षक पुस्तक में डॉ० सागरमल जैन भूमिका पर विद्वान समीक्षक (डॉ० सुदीप जैन ?) ने टीका की है कि खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख में 'णमो' पाठ है, 'नमो' नहीं। वास्तव में पाठ 'नमो' है, 'णमो' नहीं। शौरसेनी और अर्धमागधी के झगड़े में सम्प्रदायग्रस्त उन्माद में डॉ० सुदीप जैन और डॉ० सागर मल जैन यदि उपलब्ध स्रोत सामग्री को मिथक बनाने में जुट जायेंगे तो जैन विद्या और प्राकृत भाषा व साहित्य के अध्ययन की क्या दशा होगी, स्वयं तीर्थंकर भी व्यवस्था नहीं कर पायेंगे।

चिन्तन-प्रवाह : सेवा से श्रेयस की ओर—ले०—श्री जमनालाल जैन; प्र०—अनेकान्त स्वाध्याय मन्दिर, वर्धा, व जय-जगत सेवा संस्थान, वाराणसी; प्राप्ति—जैन बुक सेन्टर, अभय कुटीर, सारनाथ, वाराणसी-२२१००७; १८-१२-१९९९; पृ० २५६

श्री जमनालाल जैन की ७७वीं वर्ष-गांठ पर १८ दिसम्बर, १९९९, को उनके दो अनन्य मित्र श्री मूलचन्द बड़जाते (वर्धा) और श्री शरद कुमार 'साधक' (वाराणसी) ने समय-समय पर लिखे गये उनके ५३ चिन्तन प्रसूनों का एक पुष्प-गुच्छ प्रकाशित कर उनके प्रति मनस्वितापूर्ण अनुराग प्रकट किया है। दो वर्ष पहले जब जमनालाल जी ७५ वर्ष के हो रहे थे तो अपने में मगन अथवा खोये-खोये से व्यक्ति का नागरिक या साहित्यिक अभिनन्दन करने का विचार कुछ स्नेही मित्रों के मन में आया था, लेकिन चूंकि प्रदर्शन, प्रसिद्धि और महत्त्वाकांक्षा से अलग-थलग या उदासीन रहने वाले जमनालाल जी को यह स्वीकार नहीं था, अतः उनकी सुलझी, समाजोपयोगी तथा सर्वोदय विचारधारा से अनुप्राणित विचार-सामग्री के संकलन के रूप में यह पुस्तक प्रकाश में आई, जिसके

संकलन और सम्पादन का श्रेय प्राचार्य श्याम सुन्दर जी झंवर (इन्दौर) को है।

खण्ड १ (मानवता के मन्दराचल महावीर) में ६ लेखों में महावीर के व्यक्तित्व को एक जिज्ञासु की सहज जिज्ञासा के माध्यम से देखने का विचारपूर्ण प्रयास है। खण्ड-२ (सत्य-अहिंसा-अपरिग्रह) में १० लेखों में और खण्ड-३ (श्रावक-सभ्यता) के ७ लेखों में सिद्धांतों और साधना-पथ का व्यावहारिक दृष्टि से विवेचन है। खण्ड-४ (साहित्य और समाज) में ७ लेखों में अन्य विषयों के अतिरिक्त बनारसी दास, वीरेन्द्र कुमार जैन और वृन्दावन पर समीक्षात्मक दृष्टि भी है। खण्ड-५ (चिन्तन की पगडंडियाँ) में १९ लेख जैन समाज की कुछ ज्वलन्त समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं और उन्मुक्त रूप से सोचने को प्रेरित करते हैं। खण्ड-६ (अपने घर में) में ४ लेख आत्म-कथ्यात्मक हैं, ३ लेखों में पुत्री-त्रय सो० सुषमा, सो० रेखा और सो० बीना ने अपने पिता के व्यक्तित्व को जैसा देखा वैसा बूझा है, और ३ लेखों में अनन्य मित्र मूलचन्द बड़जाते, शरद कुमार साधक और मूलचन्द जैन अजमेरा ने अपने आत्मीय संस्मरण दिये हैं। अन्त में, परिशिष्ट में उनके सुपुत्र डा० अभय कुमार ने जमनालाल जी के पत्रिका-सम्पादन (४) एवं पुस्तक-लेखन (८), सम्पादन-संशोधन-संकलन (३८), महात्मा भगवान दीन की कृतियों का लेखन-सम्पादन-प्रकाशन (३१) तथा अनुवाद व सम्पादन (१९), और प्रकीर्ण साहित्यिक गतिविधियों का समाकलन किया है।

केन्द्रीय तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान के निदेशक श्री समदोङ् रिनपोछे के आमुख, प्रा० श्याम सुन्दर झंवर के परिचय और सो० लीलावती जैन की प्रस्तावना ने जमनालाल जी के व्यक्तित्व और चिन्तन को सहज किया है। १९५१ में जमनालाल जी द्वारा अन्तर-जातीय विवाह किया जाना एक क्रान्तिकारी कदम था। जीवन में सादगी और संघर्षों के बीच समता, तथा चिन्तन में स्वतन्त्रता, क्रान्तिधर्मिता और स्पष्टवादिता, जमनालाल जी के व्यक्तित्व को

गरिमा प्रदान करते हैं। **शोधादर्श** के प्रति उनका शुरू से ही अनुराग रहा है और हमें अपने स्पष्टवादी लेखन के लिए वह प्रेरित और प्रोत्साहित करते रहे हैं। ७७ वर्ष की पूर्ति पर इस पुस्तक के प्रकाशन पर प्रकाशक मित्रों को साधुवाद के साथ ही श्री जमनालाल जी को अपना भावभीना अभिनन्दन भी हम व्यक्त करते हैं।

उपदेश रत्नमाला (पृ० ८५), **सौभाग्य रत्नमाला** (पृ० ६०), **निबन्ध रत्नमाला** (पृ० ६८), और **आदर्श निबन्ध** (पृ० ७४)—लेखिका—पंडिता चन्दाबाई जैन; प्र०—श्री जैन बाला विश्राम अमृत महोत्सव समारोह समिति, धर्मकुञ्ज, धनुपुरा, आरा-८०२३०१; १९९७

१९१०, १९१८, १९२६ और १९२६ में क्रमशः प्रथम बार प्रकाशित उपरोक्त पुस्तिकाओं में पंडिता चन्दाबाई जैन के स्त्रियों में शिक्षा, नैतिकता, धर्मनिष्ठा और स्वाभिमान के संस्कारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिये निबद्ध क्रमशः ४२, ९, १९ और ३० निबन्धों का संकलन है। ये विचार लेखिका के २०, २८, और ३६ वर्ष की आयु के थे, जो उनकी २०वीं शती के प्रथम चतुर्थांश में भारत में सामान्यतः और उत्तर भारत में विशेषतः तथा उसमें भी जैन समाज में विशिष्टतः स्त्रियों की अशिक्षा और दयनीय दशा पर मनन, चिन्तन और स्वयं स्त्री-शिक्षा के महनीय कार्य से जुड़ जाने की साध को प्रकट करते हैं। एक विशुद्ध वैष्णव परिवार में जन्मी चन्दाबाई जी ने अपने श्वसुर गृह के जैन संस्कारों को शीघ्र ही आत्मसात कर लिया और जैन शास्त्रों के विशिष्ट ज्ञान के लिये उन्हें 'विदुषी रत्न', 'साहित्य सूरि' और 'सिद्धांताचार्य' की उपाधियों से मण्डित किया गया। विवाह के एक वर्ष में ही मात्र १३ वर्ष की अल्पायु में वह विधवा हो गईं परन्तु उनके जेठ बा० देव कुमार ने उन्हें अध्ययन की ओर उन्मुख किया और स्त्रियों में शिक्षा के प्रचार की प्रेरणा दी। मात्र १७ वर्ष की आयु में उन्होंने आरा में एक कन्या विद्यालय की स्थापना की और बाद को जैन बाला विश्राम की १९२१ में स्थापना की एवं मृत्यु-पर्यन्त १९७७ तक

उसकी अधिष्ठात्री रहीं। यह अपने समय की जैन समाज में स्त्रियों की शिक्षा के लिये विख्यात एक ऐसी संस्था थी जिसमें भारत के विभिन्न भागों में संभ्रान्त जैन परिवार अपनी पुत्रियों को शिक्षा ग्रहण करने के लिये भेजते थे ताकि अधिष्ठात्री चन्दाबाई जी के सत्संग में उनमें धार्मिक संस्कार भी पोषित हो सकें। १९९७ में जैन बाला विश्राम की स्थापना को ७५ वर्ष पूरे हुए और इस उपलक्ष में अमृत महोत्सव समारोह समिति के मानद निदेशक बा० सुबोध कुमार जैन ने अपने दादी चन्दाबाई जी के विचारों और उनके चित्रमय जीवन-वृत को प्रकाशित कर जैनों में स्त्री-शिक्षा और जागृति के प्रथम मार्ग-प्रकाशक के प्रति समुचित श्रद्धांजलि अर्पित की है, और इसमें शोधादर्श परिवार भी अपनी विनयांजलि अर्पित करता है।

नगरकोट–कांगड़ा महातीर्थ—ले०–साहित्य वाचस्पति श्री भवंरलाल नाहटा; प्र०– श्री सोहन लाल कोचर, ८६, कैनिंग स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००७१; १९९१ ई०; पृ० १३८ + चित्रावली; मूल्य रु० २५/-

जलन्धर-त्रिगर्त देश में स्थित नगरकोट (कांगड़ा) जो अब हिमाचल प्रदेश में सम्मिलित हैं, श्वेताम्बर-आम्नायी जैन धर्मावलम्बियों का एक महातीर्थ रहा जिसके साहित्यिक उल्लेख १५वीं शती ईस्वी से मिलते हैं। उपाध्याय जयसागर की **विज्ञप्ति-त्रिवेणी** (जो माघ सुदि १०, संवत १४८४ = १४२७ ई०, को लिखी गयी थी) को नगरकोट-कांगड़ा माहातीर्थ के माहात्म्य को प्रकाश में लाने का श्रेय है। कंगडकोट (कांगड़ा) के राजा नरेन्द्र चन्द्र के लिये कवि जयानन्द ने 'सुसर्मपुरीय नृपति वर्णन छन्द' की रचना की थी। इसके छन्द सं० १५७० (१५१३ ई०) के गुटकों में प्राप्त हैं। १७वीं शती ईस्वी के बाद जैन प्रभाव इस क्षेत्र में ह्रास को प्राप्त होता गया। श्री भवंर लाल नाहटा ने, कांगड़ा से सम्बन्धित १५वीं शती के साहित्यिक उल्लेखों, ज्ञात पुरातत्त्व और डॉ० बनारसी दास जैन एवं श्री हीरा लाल दुग्गड़ के लेखों का समुचित उपयोग करते हुए, नगरकोट-कांगड़ा का जैनों के महातीर्थ के रूप में एक रोचक परिचय

प्रस्तुत किया है जो पाठकों में उसके इतिहास के प्रति जिज्ञासा उत्प्रेरित करेगा।

तीर्थ श्री स्वर्णगिरि–जालोर—ले०–साहित्य वाचस्पति श्री भवंर लाल नाहटा; प्र०–प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर/बी० जे० नाहटा फाउन्डेशन, ४, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता-७०००००७; १९९५ ई०; पृ० १०८, सचित्र; मूल्य रु० ६०/-

राजस्थान में जोधपुर से १२५ किमी० दक्षिण में अवस्थित जालोर नगर से संलग्न स्वर्णगिरि पहाड़ है जिसकी चढ़ाई लगभग डेढ़ मील है और इस पर निर्मित दुर्ग ८०० गज लम्बा और ४०० गज चौड़ा है। यह किंवदन्ती है कि यहाँ करोड़पति लोग ही निवास करते थे और ९९ लाख के धनाढ्य को भी यहाँ निवास के लिए स्थान नहीं मिलता था। चौहानों के राज्य काल में १२वीं-१३वीं शती में इसका विशेष उन्नति काल था और यहां जिनालयों का निर्माण हुआ, परन्तु १३११ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने इसका विध्वंस कर दिया। जालोर १६वीं शती में जोधपुर रियासत के राज्याधिकार में आ गया। सोनागिरि दुर्ग में स्थित जिनालयों के जीर्णोद्धार का कार्य १८७६ ई० में महाराज यशवन्त सिंह द्वारा तीन जिनालयों से शस्त्र-सामग्री हटवाकर उन्हें जैन संघ को समर्पित कर देने के बाद हुआ।

विद्वान लेखक ने बहुत यत्न पूर्वक जालोर में विभिन्न गच्छ और शासन प्रभावनाओं, विशिष्ट व्यक्तियों, यवनों के अत्याचार, जालोर में रचित साहित्य, तथा कान्हड़दे प्रबन्ध और प्राचीन तीर्थ मालाओं में स्वर्णगिरि जालोर के उल्लेखों का विवरण दिया है। श्री नगर्षि, श्री मतिकुशल, श्री लावण्यसागर, कवि पल्हु और श्री ज्ञानप्रमोद गणि द्वारा रचित जालोर-स्वर्णगिरि से सम्बन्धित स्तोत्र-स्तवन भी दिये हैं। जालोर-स्वर्णगिरि के अभिलेखों को भी दिया है जो सं० १२२१ (११६४ ई०) से सं० १८६३ (१८०६ ई०) तक के हैं। यह सब सामग्री व्यवस्थित रूप में एक पुस्तक में उपलब्ध कर जालोर-स्वर्णगिरि के जैन धर्म से संबंध को प्रकाश में लाने के लिए श्री भंवर लाल जी नाहटा साधुवाद के अधिकारी हैं।

—डा० शशि कान्त

समाचार विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

आर्यिका द्वय की मनोव्यथा

जैन गजट के दि० ३० दिसम्बर, १९९९, के अंक में आर्यिका-द्वय पू० श्री सम्मेदशिखरमती जी व श्री कैलाशमती जी का महा-सभाध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी जी को सम्बोधित एक महत्वपूर्ण पत्र प्रकाशित हुआ है। पत्र में आर्यिका जी लिखती हैं कि गत वर्ष उन्होंने शिखर जी में चातुर्मास करने के उपरान्त (मुनि श्री उत्तम सागर जी सहित) विहार करते हुए बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्रवेश किया। "इस क्षेत्र में प्रथम बार आने से यहां के माहौल से अनभिज्ञ थी, अतः चातुर्मास का समय अत्यन्त निकट आ जाने से आस-पास किसी भी गांव में चातुर्मास कर लेंगे, ऐसा विचार कर विशेष आगे नहीं बढ़ी। लेकिन एक दो गांव में जाकर देखा तो श्रावकों ने इन्कार कर दिया कि हम लोग आर्यिकाओं की आहार के समय पूजा, परि-क्रमा आदि नहीं करते हैं अतः आप हमारे अनुरूप चलेंगे तो चातु-र्मास करवा सकते हैं अन्यथा नहीं। एक स्थान में श्रावकों द्वारा यह भी कहा गया कि हम लोग बीस पंथी साधु का चौका नहीं लगाते चाहे वह साधु हमारे यहां से बिना आहार किये ही लौट जाए। आखिर हमें कुण्डलपुर क्षेत्र (दमोह) में आकर अपने बल पर यहां चातुर्मास करना पड़ा। चातुर्मास की अवधि में स्वाध्याय आदि के बीच में भी इसी तरह की चर्चा चलती रही कि आगम प्रमाण बताइये कि वस्त्रधारियों की नवधा भक्ति करना कहां लिखा है। क्योंकि डाइरेक्ट प्रमाण चाहिए कि अमुक स्थान पर आर्यिका व छुल्लक आदि की नवधा भक्ति की गई, इस विषय में हमारे पास भी पूर्णरूपेण उत्तर नहीं था और जो कुछ हमने बताया उससे उन्हें सन्तुष्टि नहीं है।.....आप महासभा के पदाधिकारीगण से तथा वरिष्ठ आचार्यों व आर्यिकाओं के चरण सानिध्य में विचार-विमर्श कर इस परिस्थिति का निर्णय अवश्य लें, ऐसी अभिलाषा है। कारण कि श्रावक इस प्रकार की कट्टरता धारण कर अपने कर्त्तव्य

का लोप करते जायेंगे तो पू० आ० विद्यासागर जी म० के अतिरिक्त अन्य संघों की आर्यिकाओं का विहार करना कठिन हो जाएगा। इसका कारण यह भी है कि कई साधु आहार के समय श्रावकों को आर्यिकाओं व छुल्लक आदि की नवधा भक्ति न करने का नियम देकर आहार शुरू करते हैं, यहां तक कि शिविरों में शिविरार्थियों को आर्यिकाओं की नवधा भक्ति न करने का नियम दिलाने के बाद ही शिविर में भाग लेने का अधिकार दिया जाता है। ऐसी विषम परिस्थिति में भावी काल में इसका रिजल्ट क्या होगा, इस पर विचार कर आपको इसका निर्णय अवश्य लेना चाहिए।"

धर्म संरक्षिणी महासभा के धर्मनिष्ठ अध्यक्ष जी ने इस पत्र का क्या उत्तर भेजा है, इसकी हमें जानकारी नहीं है। अभी तक उसे कहीं प्रकाशित हुआ देखने में नहीं आया। हमें यह भी नहीं मालूम कि ये आर्यिका जी तथा उनके साथ विहार कर रहे मुनिश्री किन आचार्य के शिष्य हैं तथा क्या गुरु की अनुज्ञा से स्वतन्त्र विहार कर रहे हैं या गुरु संघ के अनुशासन से ऊब कर, तथा उन्होंने इस विषय पर अपने गुरु से मार्गदर्शन प्राप्त करना क्यों नहीं उचित समझा।

स्थिति जो भी हो, हमें तो यह बड़ा विचित्र लगता है कि सर्व परिग्रह के त्याग का व्रत धारण करने वाली आर्यिका जी को अपनी पूजा-परिक्रमा आदि बाह्य मान-मर्यादा का इतना अधिक आग्रह है कि जहां इस प्रकार उनकी भक्ति का प्रदर्शन न हो वहां के सुश्रावकों से शुद्ध आहार लेना भी उन्हें स्वीकार नहीं तथा स्वयं अपने बल पर पूरे चातुर्मास आहार की व्यवस्था करना उन्होंने उचित समझा। स्पष्टतः उन्हें इस प्रकार की व्यवस्था के लिए श्रावकों से द्रव्य का सहयोग तो प्राप्त करना ही पड़ा होगा—सम्रंभ-समारंभ-आरम्भ तथा उद्दिष्ट भोजन के दोष अलग से। और भी विचित्र तो यह है कि सन्त शिरोमणि आ० श्री विद्यासागर म० की संघस्थ विदूषी आर्यिकाएं तो श्रावकों द्वारा पूजा-परिक्रमा कराना उचित नहीं समझती पर इन तथाकथित बीस पंथी आर्यिकाओं को इसका इतना अधिक आग्रह है जबकि इसके पक्ष में कोई दृष्टान्त आर्यिका

जी पुराणों या प्राचीन कथा साहित्य से उपलब्ध नहीं करा सकी हैं। नवधा भक्ति का अधिकारी तो कदाचित् केवल पंच परमेष्ठियों को ही माना गया है और आर्यिकाओं की गणना पंच परमेष्ठी में नहीं होती।

हैपी बर्थ-डे टू यू

"कामा—यहाँ गत् १३ जनवरी को बहुचर्चित मुजफ्फरनगर काण्ड के हीरो श्री सुधर्म सागर की जन्म-जयन्ति मनाई गयी। इस अवसर पर आधुनिक संस्कृति के अनुसार उनके भक्त जनों ने केक की व्यवस्था की और उसे महाराज श्री के हाथों से कटवाया गया। यह केक बाजारू था या दूध का बनवाया गया था, इसकी स्पष्ट कोई जानकारी हमें नहीं मिली लेकिन इस अवसर पर कुछ गिने-चुने लोगों की उपस्थिति में महाराज जी को लक्ष्य करके 'हैपी बर्थ-डे टू यू' कह के महाराज जी की जयन्ति मनाई गई। मजे की बात यह है कि महाराज जी ने अपने हाथों से अपने भक्तों को केक भी खिलाया। आधुनिक दिगम्बरत्व की सीमाएं कहां तक आ गईं।"

—जैन सन्देश, दिनांक २ फरवरी, २०००

एक महाव्रती द्वारा अपना जन्म दिन इस आधुनिकतम शैली में मनाए जाने से व्यथित हो कर तीर्थंकर के जागरूक सम्पादक डा० नेमीचन्द जी ने पत्रिका के फरवरी २००० के अंक में अपनी मासिक सम्पादकीय टिप्पणी प्रकाशित की है जिसका निम्नलिखित अंश अवलोकनीय है—

"**पश्चिम से सूर्योदय**—यह एक ऐसी घिनौनी घटना हुई है जिसे काल पुरुष ख्वाब में भी मुआफ़ नहीं करेगा। उपस्थितों की 'हैपी बर्थ-डे टू यू' की गूंज के साथ मुनिराज ने जो केक का आहार दान दिया है उसने समाज का आसमान मेघाच्छन्न कर दिया है। इस घटना के आगे हमारी अब तक की उपलब्धियों ने दम तोड़ दिया है। जिस निर्लज्जता और आपराधिकता के वातावरण में यह सब हुआ है, उससे यह उजागर हो गया है कि **जैन समाज अब एक निष्प्रभ, निष्प्राण, कायर, विवश, निर्बल और मरणोन्मुख समाज है**, जिसके

पास न कोई जीवन दृष्टि है और न ही कोई सुस्पष्ट/सशक्त नेतृत्व। उपर्युक्त काण्ड को.....लोग भले ही सुधर्मसागर जी का बर्थ-डे सम्बोधित करें, लेकिन हम इसे श्रमण सांस्कृतिक मूल्यों का मृत्यु-दिन (डेथ-डे) कहेंगे। वस्तुतः इस दिन हमने जो दफन किया है उसकी तो कयामत के दिन भी कब्र से बाहर आने की उम्मीद नहीं है। क्या गले तक पानी बढ़ आने पर भी हम इन चुनौतियों के आगे चुप्पी साधे रहेंगे और कोई उपयुक्त जवाब नहीं देंगे ? क्या पिच्छि-कमण्डल की अस्मिता पर हुए इस हमले को हम यूं ही दर गुजर कर जायेंगे या इसमें से कोई सबक लेकर समाज में एक रिनेसां लाने की कोशिश करेंगे ?''

तीर्थंकर के विद्वान सम्पादक जी की व्यथा तथा समाज के नेतृत्व पर रोष अपनी जगह उचित ही है। पर आज तो प्रायः प्रत्येक महाव्रती अपना जन्म दिन (वर्ष में एक बार नहीं वरन् दो-दो बार—एक संसार में अवतरण के दिन तथा दूसरा सन्यास पर्याय में अवतरण के दिन—दीक्षा दिवस के रूप में) अपने यश-ख्याति प्रभाव के अनुरूप विशाल समारोह पूर्वक मनाता है या भक्तों से मनवाता है। समारोह में महाराज जी का पाद-प्रक्षालन, गुणानुवाद तथा दीर्घ जीवन की कामना तो की ही जाती है, प्रीति भोज/महा भोज का आयोजन भी प्रायः किया ही जाता है। महाराज जी फल नारियल आदि तो अपने हाथ से उठा कर देते ही हैं, प्रसाद व भोज सामग्री को भी वितरण-पूर्व प्रायः उनसे छुआ दिया जाता है। सुधर्मसागर जी ने जन्म दिन समारोह में केक (जो दूध का तो बना-वाया गया होगा ही) अपने हाथ से काटा तथा उसका प्रसाद उपस्थित भक्तों में वितरित किया। भक्तों ने भी भाषण आदि के द्वारा उनके दीर्घ जीवन की कामना करने के बजाय आधुनिक शैली में अंग्रेजी में 'हेपी बर्थ-डे टू यू' गा दिया। आज जब हमारे साधु संघों में आधुनिकता व अंग्रेजी का मोह इतना अधिक बढ़ गया है कि एक आर्यिका जी अपने गुरु आचार्य जी को 'पापा' कह कर सम्बोधित करती हैं और एक अन्य आर्यिका जी की अंग्रेजी मिश्रित

हिन्दी में कविताएं एक प्रतिष्ठित धार्मिक पत्रिका में प्रकाशित होती हैं तो इन आचार्य जी के भक्तों द्वारा अंग्रेजी जन्म दिवस गान से कौन सा पहाड़ टूट पड़ा, यह हमारी समझ में नहीं आया।

मुजफ्फरनगर काण्ड और उसके कुछ ही समय बाद सोनागिरि काण्ड के बाद श्री सुधर्मसागर जी को स्वयं ही मुनि दीक्षा छेद देनी चाहिए थी पर कदाचित् उन्हें अपने साध्वाचार में कोई दोष नहीं दिखाई पड़ता। समाज के नेताओं, शास्त्र मर्मज्ञ विद्वत् जनों तथा समाज के प्रबुद्ध जनों की यह कमजोरी है कि साधु कितना ही शिथिलाचारी क्यों न हो पर वे उसे दीक्षा छेद करने के लिए बाध्य नहीं कर पाते। विडम्बना यह भी है कि ऐसे साधु समाज में ही एक ऐसा गुट बनाने में समर्थ हो जाते हैं जो उनकी जय-जयकार तो करता ही है उनके लिए झगड़ा-फ़साद करने के लिये भी तत्पर रहता है।

२१वीं सदी का प्रारम्भ कब से

वयोवृद्ध समाजसेवी श्री भगत राम जैन का एक वक्तव्य **दिगम्बर जैन महासमिति पत्रिका** (दिसम्बर १९९९) तथा कुछ अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने सर्व साधारण को यह अवगत कराया है कि "बीसवीं सदी का समापन ३१ दिसम्बर, १९९९, को न होकर ३१ दिसम्बर, २०००, को होगा क्योंकि अभी तो इस सदी के ९९ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं। किन्तु दुनिया में ऐसे लोगों की बहुत संख्या है जो सन् २००० से ही इक्कीसवी सदी की शुरुआत मान रहे हैं। यह वे लोग हैं जो शून्य से गणना की शुरुआत मानते हैं, जो भारतीय ज्योतिष के हिसाब से सही नहीं है। भारतीय पंचांग लेखकों ने कोई भी गणना शून्य से शुरू नहीं की है। एक भारतीय गणितज्ञ का यह भी कहना है कि जो है ही नहीं वहां से कोई गणना कैसे प्रारम्भ की जा सकती है। इस दार्शनिक तर्क में वैज्ञानिकता है, तथा २०वीं सदी की शुरुआत भी सन् १९०१ से ही मानी गई थी यद्यपि सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने अभियान चलाया था कि २०वीं सदी की शुरुआत १ जनवरी, १९००, से

मानी जाय।" वक्तव्य के अन्त में श्री भगत राम ने व्यंग करते हुए लिखा है कि लगता है कि पश्चिम के मौज-मस्तीवादी समाज ने नई सदी का आनन्दोत्सव जल्दी मनाने के चक्कर में सन् २००० से ही नई सदी की घोषणा कर दी है।

हमारी अपनी समझ में फ्रायड की मान्यता बिल्कुल सही थी तथा दुनिया के बहुसंख्यक समुदाय ने २१वीं सदी की शुरुआत १ जनवरी, २०००, से मान कर कोई गलती नहीं की है। जब किसी शिशु का जन्म होता है तो उसकी आयु शून्य वर्ष की होती है। जब वह १ वर्ष का हो जाता है तो उसकी पहली जयन्ति मनायी जाती है तथा उसके जीवन का दूसरा वर्ष प्रारम्भ हो जाता है। इसी प्रकार ३१ दिसम्बर, २००० को २१वीं सदी का प्रथम वर्ष समाप्त होगा तथा १ जनवरी, २००१, से दूसरे वर्ष का प्रारम्भ होगा।

दवाईयों पर शाकाहारी या मांसाहारी लिखा जाना जरूरी बना

श्रीमती मेनका गांधी के सामाजिक न्याय मंत्रालय द्वारा जारी किए गए एक आदेश के अन्तर्गत कैमिस्ट की दुकानों में बिकने वाली दवाओं पर "शाकाहारी" या "मांसाहारी" छपा होना जरूरी कर दिया गया है। ऐसी दवाईयां जिनमें इस्तेमाल किए गये किसी तत्त्व का आधार पशु-पक्षी हों, उन पर 'मांसाहारी' का लेबिल लगाना होगा। आदेश के तहत आयरन टानिक में पशुओं के हेमोग्लोबिन के इस्तेमाल और जिलेटिन कैप्सूल में हड्डियों के इस्तेमाल पर रोक लगा दी गई है। वर्तमान में कैप्सूल के निर्माण में कुत्ते की हड्डी का इस्तेमाल किया जाता है। नये आदेश के तहत कैप्सूल अब केवल पेड़-पौधों से प्राप्त जिलेटिन की मदद से बनाये जाने चाहिये। आदेश के तहत ड्रग इन्सपेक्टर को दवाई की दुकानों की जांच करने तथा वहां से पशु स्रोत से प्राप्त हेमोग्लोबिन वाले आयरन टानिकों को हटा देने को कहा गया है।

देश की सम्पूर्ण अहिंसक—शाकाहारी समाज केन्द्र सरकार के हैदराबाद से प्रसारित उपरोक्त समाचार में विज्ञप्त आदेश का हार्दिक स्वागत करेगी। जो अहिंसा प्रेमी व्यक्ति किसी भी प्रकार के

मांसोत्पाद के उपयोग से बचना चाहते हैं, उन्हें इन आदेशों से बड़ी राहत मिलेगी। दवाईयों पर 'मांसाहारी' का संकेत न होने के कारण तथा वानस्पतिक जिलेटिन से निर्मित कैप्सूलों के उपलब्ध न होने के कारण वे अनजाने में या विवशता से मांसोत्पादों का उपयोग कर रहे थे।

वैष्णवीकरण के बढ़ते चरण

"साडम (बोकारो) नगरी में पू० आचार्य श्री भरत सागर म० चातुर्मासोपरान्त मधुबन (शिखर जी) से विहार कर **भोमियों जी की वेदी प्रतिष्ठा** में अपना सानिध्य प्रदान करने के लिये पधारे।

ध्यान डूंगरी (भीण्डर) के नवोदित अतिशय क्षेत्र पर गत चातुर्मास काल में बालाचार्य श्री योगीन्द्र सागर म० की प्रेरणा से नवग्रह मन्दिर का निर्माण हुआ तथा नवरात्रि विधान बड़े समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ।" —एक समाचार

श्वेताम्बर जैन आम्नाय में भोमिया जी की बड़ी मान्यता है। श्वेताम्बर कोठी मधुबन में प्रवेश करते ही भोमिया जी का भव्य मन्दिर है जिसमें पूजा-उपासना करते श्रद्धालु जनों की भीड़ लगी रहती है। पर दिगम्बर जैन धर्म में सरागी देवी-देवताओं की पूजा-उपासना के लिए कोई स्थान नहीं है तथा इसके पूर्व किसी दिगम्बर जैन मन्दिर में भोमिया जी की वेदी प्रतिष्ठा हुई हो, ऐसा अभी तक हमारे देखने-सुनने में नहीं आया था।

वात्सल्य-रत्नाकर स्व० आचार्य श्री विमल सागर म० के शिष्योत्तम कहे जाने वाले आचार्य श्री भरत सागर म० को दिगम्बर जैन समाज को कई धार्मिक उपक्रम **प्रथम बार** देने का श्रेय प्राप्त है, यथा—मधुबन में तीस-चौबीसी तथा उसकी 'न भूतो न भविष्यति' तर्ज वाली पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा, कामदेव मन्दिर तथा समाधि मन्दिर (जिसमें स्व० आ० श्री विमल सागर म० की वेदी में प्रतिष्ठित तदाकार मूर्ति के, यदि प्रतिदिन नहीं तो कम-से-कम विशेष अवसरों पर, तीर्थंकर-प्रतिमा के समान पंचामृत अभिषेक पूजा आदि किये जाते हैं) और अब प्रथम बार किसी जिन मन्दिर में वेदी में प्रतिष्ठित भोमिया जी।

हमने कभी पढ़ा था कि जिनमन्दिर जिनेन्द्र भगवान के समवशरण के प्रतीक होते हैं तथा वेदी में प्रतिष्ठित प्रतिमा गंधकुटी में विराजित तीर्थंकर महाप्रभु की प्रतीक। मन्दिर में प्रवेश करने पर भक्त अनुभूति करता है मानो उसे उक्त जिनेन्द्र भगवान की परम शान्त परम वीतरागी छवि के दर्शन हो रहे हैं जिनकी सर्व प्राणि-हितोपदेशी सर्वोदयी दिव्य ध्वनि धर्मामृत की वर्षा कर अभी-अभी मौन हुई है। उनके अनन्त गुणों का चिन्तवन करते हुए वह कामना करता है कि वह भी ऐसा पुरुषार्थ कर सके कि उसे स्वात्म भाव की उपलब्धि हो जाए। जिनेन्द्र भगवान की पूजा-उपासना भक्ति वह उनके समान ही जन्म-जरा-मरण के दुखों से, संसार भ्रमण से, छुटकारा पाने के लिये करता है, न कि किसी भौतिक सुख-सम्पदा की प्राप्ति जन्य क्षणिक सुख के प्रयोजन से।

पर, कदाचित् हमारे वर्तमान के महामुनियों की दृष्टि में जिनमन्दिर की तथा जिनेन्द्र भगवान की पूजा-उपासना की उपर्युक्त अवधारणा दकियानूसी (obsolete), अनाकर्षक एवं अव्यावहारिक हो गई है। अतः उन्हें लोकरंजक लोक-आकर्षकस्वरूप प्रदान करने के लिये नित नवीन आयाम जोड़े जाना आवश्यक हो गया हैं। सहस्त्रादिक वर्षों के दीर्घकालीन भट्टारकीय युग में धर्म प्रभावना के निमित्त से भट्टारक स्वामियों द्वारा प्रारम्भ किया गया मन्त्र-तन्त्र-चमत्कार आदि का प्रयोग धीरे-धीरे अपनी यश-ख्याति अर्जन के साथ-साथ भक्त जनों के रोग-कष्ट आदि के निवारणार्थ किया जाने लगा तथा पूजा-उपासना को भी भौतिक मनोकामनाओं की पूर्ति का साधन बनाया जाने लगा। आज के कतिपय महामुनि तथा विदूषी आर्यिका माताएं इस प्रवृत्ति को और भी गति प्रदान करने में लगे हैं।

कुपित या असुविधाजनक ग्रहों की पूजा-उपासना से शान्ति के प्रयोजन से नवग्रह मन्दिर तथा नवरात्रि विधान, अभिनव भट्टारक बालाचार्य श्री की इस दिशा में नवीनतम देन है।

अभिनन्दन

श्रीमती हेमा शर्मा को **वीरोदय महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन** नामक शोध प्रबन्ध पर महात्मा ज्योतिबा फुले विश्व-विद्यालय, बरेली, ने पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की।

श्रीमती प्रिया जैन को **उपमिति भव प्रपंच कथा का विश्लेषणात्मक अध्ययन** पर मद्रास विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की।

श्री सुरेन्द्र कुमार जैन को **आचार्य विमलसूरि कृत पउमचरियं: एक सांस्कृतिक अध्ययन** पर जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, ने पी-एच० डी० उपाधि प्रदान की।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ को नीदरलैण्ड इन्टरकल्चरल ओपन यूनिवर्सिटी द्वारा डी० लिट्० की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

गणतन्त्र दिवस पर भारत सरकार द्वारा समाजसेवी **श्री डी० वीरेन्द्र हेग्गड़े** तथा प्रख्यात सरोदवादिका पद्मश्री **श्रीमती शरन रानी बाकलीवाल** को **पद्म भूषण** और संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विद्या संस्थान, लखनऊ, के निदेशक **डॉ० महेन्द्र भण्डारी** को **पद्मश्री** सम्मान से सम्मानित किया गया।

समाजसेवी **श्री भगतराम जैन** को दिल्ली में एक भव्य समारोह में **शताब्दी पुरुष सम्मान** से सम्मानित किया गया।

जैन विद्या के प्रख्यात विद्वान **डॉ० सागरमल जैन** को अ० भा० साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर द्वारा ९ अक्तूबर, १९९९, को उदयपुर में **स्व० प्रदीप रामपुरिया पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

१३ नवम्बर को श्री महावीर जी में दिगम्बर जैन परिषद के हीरक जयन्ती अधिवेशन में वयोवृद्ध समाजसेवी **श्री ताराचन्द्र जैन 'प्रेमी'** को **साहू अशोक जैन परिषद श्री पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। श्री प्रेमी ने पुरस्कार में प्राप्त राशि सामाजिक और पारमार्थिक संस्थाओं को दान देने की घोषणा की।

मुम्बई में १९ नवम्बर को वेजीटेरियन सोसायटी द्वारा

जलगाँव के **श्री रतनलाल सी० बाफना** को **वेजीटेरियन आफ दी इयर पुरस्कार** से सम्मानित किया गया ।

भारतीय दलित साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, ने **श्रीमती सुषमा जैन**, सहारनपुर, को ५ दिसम्बर को **डॉ० अम्बेडकर फैलोशिप सम्मान-९९** से सम्मानित किया ।

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद ने २६ दिसम्बर को **डॉ० पुष्पराज जैन** व **डॉ० वीरसागर जैन** को **गोपालदास बरैया पुरस्कार** हेतु, **डॉ० मनोरमा जैन (वाराणसी)** को **पण्डित महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य पुरस्कार** हेतु तथा **ब्र० जतीशचन्द शास्त्री (सनावद)** को **पण्डित प्रवर टोडरमल जी पुरस्कार** हेतु चयनित किया ।

१६ जनवरी, २०००, को अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद (दिल्ली प्रदेश संभाग) के तत्वावधान में पाँच वरिष्ठ जैन लेखिकाओं—**डॉ० सुनीता जैन**, श्रीमती कमला सिंघवी, डॉ० कमला जैन, डॉ० सन्तोष गोयल तथा श्रीमती श्रीप्रभा जैन को साहित्य सृजन एवं उसके संवर्द्धन में उनके उल्लेखनीय योगदान हेतु **लेखिका रत्न सम्मान** से विभूषित किया गया ।

१६ जनवरी को ही सोलापुर में **मा० आर० जी० गांधी श्रमण संस्कृति साधना पीठ, मुम्बई**, की ओर से **समाज भूषण पुरस्कार** से ब्र० विद्युल्लता शहा (सोलापुर), भाऊ साहेब गांधी (सोलापुर), डॉ० रमण दोशी (माढ़ा) तथा डॉ० नेमीचन्द जैन (इन्दौर) को सम्मानित किया गया ।

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, द्वारा जैन दर्शन एवं प्राचीन भारतीय भाषाओं के प्रमुख विद्वान महामहोपाध्याय विनयसागर को **प्राकृत भारती गौतम गणधर पुरस्कार-९९** से सम्मानित किया गया । श्री विनयसागर ने पुरस्कार राशि १००१११ रु० में उतनी ही राशि मिला कर एक चेरिटेबिल ट्रस्ट बनाने की घोषणा की । इस अवसर पर **महामहोपाध्याय विनयसागर : जीवन, साहित्य और विचार** ग्रन्थ भी लोकार्पित किया गया ।

जैन जगत एवं **महावीर विचार** पत्रिकाओं के मानद सम्पादक

श्री शान्ति प्रसाद जैन को मुम्बई में भारत जैन महामण्डल द्वारा समाज रत्न की उपाधि और महावीर इंटरनेशनल द्वारा वीर सेवा मेडल प्रदान कर सम्मानित किया गया।

श्री सुरेश सरल (जबलपुर) को उनकी सद्य: प्रकाशित कृति महायोगी गुप्तिसागर जी पर वीरोदय ट्रस्ट, निर्माण विहार, दिल्ली द्वारा उपाध्याय गुप्तिसागर जी द्वारा प्रेरित वीरोदय-पुरस्कार (सन् २०००) से सम्मानित किया गया और इक्कीस हजार रुपये की राशि प्रदान की गई।

उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी उपलब्धि पर शोधादर्श परिवार अभिनन्दन करता है और हार्दिक बधाई प्रेषित करता है। ★

समाचार विविधा

यू०जी०सी० के 'नेट' एवं 'जे०आर०एफ०' पाठ्यक्रमों में 'प्राकृत'

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू०जी०सी०) में 'व्याख्याता-पद की अर्हता' (N.E.T.) तथा 'जूनियर शोधअध्येतावृत्ति परीक्षा (J.R.F.) के पाठ्यक्रमों में 'प्राकृत भाषा' एक स्वतन्त्र-विषय के रूप में स्वीकृत थी। गत वर्ष इसे किन्हीं कारणों से हटा दिया गया था। डॉ० मण्डन मिश्र जी के 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' के अध्यक्ष प्रो० हरि गौतम जी से आग्रह के परिणामस्वरूप उक्त परीक्षाओं में 'प्राकृत भाषा' को एक स्वतन्त्र-विषय के रूप में पुन: चालू करने की स्वीकृति यू०जी०सी० द्वारा १० मार्च, २०००, को प्रदान कर दी गयी है। यह सुखद एवं उपयोगी सूचना श्री कुन्दकुन्द भारती के उपनिदेशक डॉ० सुदीप जैन के सौजन्य से प्राप्त हुई है।

मुनि धर्म स्वरूप सुरक्षा संगोष्ठी

विद्वत्-रत्न वैद्य श्री गम्भीर चन्द जैन की चतुर्थ पुण्यतिथि पर कंपिल जी (फर्रुखाबाद) में उनके सुपुत्र डॉ० योगेश चन्द्र जैन ने २४ से २६ दिसम्बर, १९९९, को एक त्रि-दिवसीय मुनिधर्म स्वरूप सुरक्षा संगोष्ठी का आयोजन किया। प्रथम सत्र की अध्यक्षता श्री राजेन्द्र कुमार बंसल (अमलाई) ने की। मुख्य वक्ता पं०

शैलेन्द्र जी (जबलपुर) और पं० राकेश कुमार शास्त्री (नागपुर) थे। द्वितीय सत्र में श्री राजेन्द्र बंसल ने 'मुनि संघ में आर्यिका कितने पास कितने दूर' शोध निबन्ध पढ़ा और डा० योगेश जैन ने पिच्छि पर अपने विचार व्यक्त किये। तृतीय सत्र में श्री अनूप चन्द जी एडवोकेट (फिरोजाबाद) ने 'अपरिपक्व मुनि दीक्षाएं शिथिलाचार का कारण' पर आलेख प्रस्तुत किया। संगोष्ठी में उपस्थित जन समुदाय ने यह भावना व्यक्त की कि यदि ऐसे सेमीनारों का सिलसिला चल जावे, तो निश्चित रूप से विद्वानों में बोलने का साहस आयेगा और इस ज्ञान दीप के प्रकाश में समाज नीर-क्षीर का विवेक अवश्य कर सकेगी।

इस संगोष्ठी में जहाँ देश के विभिन्न प्रांतों के विद्वानों व नेताओं ने उपस्थित होकर अपनी गरिमा मंच को प्रदान की, तो वहीं किन्हीं कारणों से उपस्थित न हो पाने पर अपने शोध-पत्र/मंगल सन्देश भेज कर भी विद्वानों ने संगोष्ठी के आयोजन की सफलता की कामना व्यक्त की। शोधादर्श लखनऊ के सम्पादक डॉ० शशि कान्त ने संगोष्ठी के आयोजन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाओं के साथ 'मुनिधर्म सुरक्षा संगोष्ठी—एक चिन्तनीय विषय' लेख भी प्रेषित किया, और उसी पत्रिका के यशस्वी सम्पादक श्री अजित प्रसाद जी ने भी इस ज्वलन्त विषय पर एक ऐतिहासिक संगोष्ठी के आयोजन के लिए अपनी मंगलकामनाएं प्रेषित कीं। पं० श्री राजमल जी (पवैया), श्रीमती लीलावती जैन (जलगांव) और श्री राजेन्द्र किशोर जैन (अलीगढ़) ने भी अपनी सद्भावनाएं प्रेषित कीं। संगोष्ठी के संचालक डॉ० योगेश जैन ने समापन करते हुए कहा कि दुराचारी मुनियों की सक्रियता इतनी खतरनाक नहीं है, जितनी कि लोक विरुद्ध आचरण न करने वाले वर्तमान कालीन साधुओं की इस विषय पर मौनप्रियता खतरनाक है, जो कि मुनिधर्म को कलंकित कर रही है।

लखनऊ में जैन न्याय पर व्याख्यान

भारतीय दार्शनिक अनुसन्धान परिषद्, लखनऊ द्वारा दिसम्बर

१९९९ में देश के विभिन्न महाविद्यालयों में कार्यरत दर्शन शास्त्र के अध्यापकों के लिए भारतीय न्याय (Indian Logic) पर एक रिफ्रेशर कोर्स आयोजित किया गया था। इस रिफ्रेशर कोर्स में **जिनवाणी** के प्रधान सम्पादक एवं जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, के सह आचार्य **डॉ० धर्मचन्द जैन** ने जैन न्याय (Jain Logic) के प्रमाण लक्षण, प्रत्यक्ष प्रमाण, आगम प्रमाण एवं नय-निक्षेप पर विशेष व्याख्यान दिये।

प्राकृत भाषा एवं साहित्य विकास संगोष्ठी

२६ दिसम्बर को शारदा नगर स्थित अनेकान्त भवनम्, वाराणसी, में प्रो० भोला शंकर व्यास की अध्यक्षता में "इक्कीसवीं शती में प्राकृत भाषा एवं साहित्य विकास की सम्भावनायें" विषय पर संगोष्ठी हुई, जिसका संचालन डॉ० फूलचन्द 'प्रेमी' ने किया। अध्यक्ष ने कहा कि प्राकृत भाषा मात्र भाषा ही नहीं बल्कि यह भारत की अन्तरात्मा और सम्पूर्ण सांस्कृतिक पहचान का माध्यम है।

अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन मेरठ का राष्ट्रीय अधिवेशन

२५ से ३१ दिसम्बर को मेरठ में जैन धर्मशाला (रेलवे रोड स्थित) में अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन मेरठ का २३वां राष्ट्रीय अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर पूज्य श्री धर्मभूषण महाराज के सानिध्य में तथा प्रख्यात विद्वानों के निर्देशन में श्री बीस तीर्थंकर विधान, आध्यात्मिक शिक्षण शिविर ओर समयसार वाचना अन्य मांगलिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुई। इस कार्यक्रम के संयोजक श्री नवनीत जैन थे।

पंडित चैनसुखदास न्यायतीर्थ जन्म शताब्दी समारोह

उक्त अवसर पर २० जनवरी से २४ जनवरी, २०००, को जयपुर में एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न हुई। प्रथम सत्र की अध्यक्षता राजस्थान के लोकायुक्त श्री मिलाप चन्द जैन ने की, सारस्वत अतिथि श्री नीरज जैन (सतना), मुख्य अतिथि महामहिम श्री अंशुमान सिंह, राज्यपाल राजस्थान सरकार, और मुख्य वक्ता प्रसिद्ध पत्रकार श्री प्रवीण चन्द छाबड़ा थे। द्वितीय सत्र में पंडित

चैनसुखदास न्यायतीर्थ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर १० विद्वानों ने अपने आलेख प्रस्तुत किये। तृतीय सत्र में शिष्य सम्मेलन में ११ वक्ताओं ने अपने सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये। चतुर्थ सत्र में संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में पर्यावरण की अवधारणा विषय पर ८ विद्वानों ने अपने शोधपूर्ण आलेख प्रस्तुत किये। पंचम सत्र की अध्यक्षता डॉ० फूलचन्द जैन 'प्रेमी' (वाराणसी) ने की और १३ विद्वानों ने आलेख प्रस्तुत किये। षष्ठम् सत्र में राजस्थान के जैन विद्वानों का संस्कृत साहित्य को योगदान विषय पर तीन विद्वानों ने आलेखों का वाचन किया। श्रीमती कमला देवी, संस्कृत शिक्षा मन्त्री, राजस्थान, के मुख्य आतिथ्य एवं श्री नीरज जी (सतना) की अध्यक्षता में समापन समारोह में आगन्तुक विद्वानों का एवं स्थानीय विद्वानों का सम्मान किया गया। संगोष्ठी संयोजक डॉ० शीतलचन्द जैन ने रिपोर्ट प्रस्तुत की।

बुन्देलखण्ड में जैन संस्कृति का उद्भव एवं विकास संगोष्ठी

अनेकान्त ज्ञान मन्दिर शोध संस्थान, बीना (सागर), के नवम् वर्ष प्रवेश पर संस्थान द्वारा २० फरवरी को **बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जैन संस्कृति का उद्भव एवं विकास** विषय पर संगोष्ठी आयोजित की गई जिसकी अध्यक्षता श्री लक्ष्मी नारायण, एडवोकेट (भरतपुर), ने की। मुख्य अतिथि वक्ता डॉ० भागचन्द 'भागेन्दु' थे। संगोष्ठी में प्रो० पी० सी० जैन (सागर) ने 'बुन्देलखण्ड में खण्डहर बोलते है', डॉ० आराधना जैन 'स्वतन्त्र' (गंजबासौदा) ने 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' और डॉ० नेमीचन्द्र (खुरई) ने 'बुन्देलखण्ड के विद्वत् मनीषी' विषयक अपने आलेखों का वाचन किया तथा संगोष्ठी-संयोजक ब्र० संदीप 'सरल' ने संस्थान द्वारा हाथ में लिये कार्य 'बुन्देलखण्ड में जैन संस्कृति का उन्नयन एवं विकास' विषयक ग्रन्थ योजना पर प्रकाश डाला।

तीन शताब्दियों के साक्षी पं० चुन्नीलाल जी शास्त्री

चन्देरी (मध्य प्रदेश) निवासी १०१-वर्षीय पं० चुन्नी लाल जैन, जिनका जन्म विक्रम संवत् १९५६ की फाल्गुनी अमावस्या

(फरवरी १८९९ ई०) को सागर जिले के परसोन ग्राम में हुआ था, विश्व में ऐसे विरले महानुभाव हैं जिन्हें उन्नीसवीं, बीसवीं एवं इक्कीसवीं—इन तीन शताब्दियों को पूर्णतः स्वस्थ रहते हुए देखने-स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे अभी भी अपना काम अपने हाथ से कर लेते हैं, चश्मे के बिना प्रतिदिन चार-पांच घण्टे अध्ययन कर लेते हैं। इनके सारे दांत असली हैं और इनकी पाँचों इन्द्रियां कार्यशील हैं। विचारों में युवकों जैसे उत्साही, शुद्ध शाकाहारी, पैदल भ्रमण में विश्वास करने वाले, खद्दरधारी गांधीवादी यह मनीषी एक भरेपूरे परिवार के मुखिया हैं। शास्त्री जी के पुत्रों में प्रबुद्ध चिन्तक-लेखक डॉ० राजेन्द्र कुमार बन्सल (अमलाई), दामादों में पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, के निदेशक डॉ० हुकम चन्द भारिल्ल और पौत्रों में **समन्वय वाणी** के सम्पादक श्री अखिल बन्सल के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्रमदान (कार सेवा) द्वारा मार्ग जीर्णोद्धार

श्री हसमुख जैन गांधी, संयोजक, दिगम्बर जैन सोशल ग्रुप फेडरेशन, इन्दौर, ने सूचित किया है कि श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूट पहुंच मार्ग के जीर्णोद्धार में समाज के हजारों भाई-बहनों ने कार सेवा के माध्यम से श्रमदान कर अपना योगदान दिया। इस जीर्णोद्धार कार्यक्रम के अवसर पर क्षेत्रीय सांसद श्री ताराचन्द पटेल द्वारा सांसद निधि से रु० ९ लाख इस मार्ग के सुधार के लिये देने की घोषणा की गई।

पत्राचार प्राकृत सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी के उक्त पाठ्यक्रम का सत्र १ जुलाई, २०००, से प्रारम्भ होगा। प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी एवं अन्य भाषाओं/विषयों के प्राध्यापक तथा अपभ्रंश, प्राकृत शोधार्थी एवं संस्थानों में कार्यरत विद्वान इसमें सम्मिलित हो सकेंगे। नियमावली एवं आवेदन पत्र अकादमी कार्यालय, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारक जी, सवाई राम सिंह रोड, जयपुर-४ से प्राप्त किये जा सकते हैं।

एन्साइक्लोपीडिया जैनिका (जैनविद्या विश्वकोश)

जैनविद्या विश्वकोश के लखनऊ कार्यालय में अकादमिक कार्य हेतु जैनविद्या के एक निष्णात विद्वान् की आवश्यकता है। वेतन योग्यतानुसार। सम्बद्ध विद्वान अपना बायोडाटा प्रो० वृषभ प्रसाद जैन, जैनविद्या विश्वकोश, बी-१/१३२, सेक्टर-जी, अलीगंज, लखनऊ-२२६०२४, को भेजें जिसमें यह उल्लेख अवश्य करें कि अभ्यर्थी विद्वान् जैनविद्या की किस ज्ञान शाखा के विशेषज्ञ हैं तथा उन्हें किन-किन भाषाओं में लिखने और पढ़ने की क्षमता है। वय व अपेक्षित मानदेय का उल्लेख भी अवश्य करें।

जैन छात्रवृत्ति कोष

मेरठ में जैन छात्रवृत्ति कोष की स्थापना १९४४ में हुई थी। मन्त्री श्री जय प्रकाश जैन, एडवोकेट, द्वारा वर्ष १९९८-९९ की रिपोर्ट में सूचित किया गया है कि रु० ६२०००/- की १४ रिफन्डेबिल छात्रवृत्तियां मेडिकल, इंजीनियरिंग और कामर्स के टेक्निकल कोर्सेज के लिए प्रदान की गईं और रु० १७६००/- की नान-रिफन्डेबिल छात्रवृत्तियां ४२ विद्यार्थियों को माध्यमिक स्तर से स्नातक स्तर तक के पाठ्यक्रमों के लिए दी गईं। सहायता राशि मन्त्री, जैन छात्रवृत्ति कोष, ९९, मान सरोवर, सिविल लाइन्स, मेरठ-२५०००२ को भेजी जा सकती है।

फतेहपुर सीकरी में उत्खनन से प्राप्त जैन पुरासम्पदा

फतेहपुर सीकरी के वीर छबीली टीले पर दिसम्बर १९९९-जनवरी २००० के दौरान उत्खनन में प्राप्त पुरासम्पदा दूसरी शती से लेकर १२वीं शती के मध्य की अनुमानित है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक श्री अजय शंकर के अनुसार "यहाँ आबादी थी जिसे नष्ट कर दिया गया। आये हमलावरों ने देवताओं की मूर्तियों को तोड़-फोड़ डाला और इधर-उधर बिखरा दिया।" प्राप्त पुरावशेष यह भी इंगित करते हैं कि यह स्थान १०वीं-१२वीं शती में जैन धर्मानुयायियों का केन्द्र रहा था। ३४ खण्डित तीर्थंकर मूर्तियां अभी तक मिली हैं जिन पर अंकित लेखों में उनका समय

९८०-१०४० ई० विदित होता है। ११वीं शती के एक जैन मन्दिर के अवशेष भी मिले हैं।

कुण्डलपुर (दमोह) के बड़े बाबा

मध्य प्रदेश के दमोह जिले में अवस्थित श्रीक्षेत्र कुण्डलपुर में 'बड़े बाबा' के नाम से विख्यात एक गुप्तोत्तर कालीन लगभग १४०० साल प्राचीन, शैलोत्कीर्ण, मनोज्ञ, विशाल पद्मासन मूर्ति, ३०० साल पूर्व महाराजा छत्रसाल द्वारा संस्कारित मन्दिर में विराजमान है। सतना के श्री नीरज जैन सन् १९४७ से ही श्रीक्षेत्र की प्रबंधन व्यवस्था से जुड़े रहे हैं और उन्होंने श्रीक्षेत्र का इतिहास और पूजन भी लिखे हैं। उन्होंने सूचित किया है कि कुछ वर्ष पहले जीर्णोद्धार के बहाने मन्दिर के सामने सिंहद्वार के नाम से एक अवांछित तथा सर्वथा अनुपयुक्त निर्माण प्रारम्भ किया गया था जिसे १९९५-९६ में पुरातत्त्व विभाग ने बन्द करने को लिखा था। उसके बाद १९९९ में वर्तमान प्रबन्ध समिति द्वारा दुर्लभ प्राचीन मन्दिर को नेस्त-नाबूद करने का कदम उठाया गया, शिखर तोड़ा गया और परिकर के जिनालयों-वेदियों को नष्ट कर दिया गया,। 'बड़े बाबा' की ऐतिहासिक मूर्ति को सरका कर नये मन्दिर में ले जाने की योजना है। करोड़ों की लागत के एक नये मन्दिर के निर्माण का भूमिपूजन आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के सानिध्य में उनके आशीर्वाद से कर दिया गया है। नये मन्दिर के लिये किये जा रहे विस्फोटों से 'बड़े बाबा' की मूर्ति प्रभावित हुई है और उसमें दरारें पड़ गई हैं। भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग ने इस संरक्षित स्मारक को ध्वस्त करने के उपक्रम पर रोक लगा दी है। श्री नीरज जैन, पं० नाथू लाल जैन शास्त्री और श्रीक्षेत्र की प्रबन्ध व्यवस्था से जुड़े रहे अन्य गणमान्य व्यक्तियों तथा 'बड़े बाबा' में आस्थावनत जन समुदाय के विरोध के बावजूद इस पुरावशेष के साथ खिलवाड़ जारी है।

किसी कारण आचार्य श्री के मन में यह बात बैठ गयी है कि 'बड़े बाबा' का वर्तमान स्थापत्य उचित नहीं है, अतः उसे ध्वस्त करना ही होगा और इसके लिये उन्होंने इन्दौर में केन्द्रीय राज्य

मन्त्री सुश्री सुमित्रा महाजन से पुरातत्त्व विभाग द्वारा लगाई गई रोक को हटवाने का आग्रह भी किया है। आचार्यश्री का जनमानस की भावनाओं के प्रति वीतराग भाव उनकी चर्या के अनुकूल है; जीर्णोद्धार उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के सिद्धान्त का अनुसरण है और नये तीर्थों/मन्दिरों का निर्माण शासन प्रभावना का अंग है अतः श्रेयस है! पुरातत्त्व से लगाव तो राग है अतः त्याज्य है!!

जैन मिलन, लखनऊ

२६ मार्च, २००० ई०, को सर्वसम्मति से श्री सुरेन्द्र नाथ जैन को जैन मिलन, लखनऊ, का अध्यक्ष और श्री नलिन कान्त जैन को पुनः मन्त्री निर्वाचित किया गया। निवर्तमान अध्यक्ष श्री नरेश चन्द्र जैन, जो संस्थापक सदस्य और मन्त्री रहे हैं, का उनकी विगत ४० वर्षों में जैन मिलन के प्रति निष्ठापूर्वक की गई सेवाओं के लिए सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया।

प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी का राष्ट्र के नाम सन्देश

लाल किला मैदान, दिल्ली, में ४ फरवरी, २०००, ई० को भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव के उद्घाटन समारोह में अपने भाषण में माननीय प्रधानमन्त्री जी ने कहा कि निरन्तर चलना, जड़ होकर बैठना नहीं, हाथ पर हाथ रख कर समय नहीं बिताना, निरन्तर चलते रहना, यह धर्म की पहचान है। चलना जीवन है। धर्म वह तत्त्व है जो धारण करता है, शक्ति देता है, जो सद्बुद्धि देता है, जो औरों का भला करना सिखाता है। हमारे देश में धर्म की प्राचीन परम्परा है। दृष्टि अलग-अलग हैं, मान्यताएं अलग-अलग हैं। यह धर्मपरायण देश है। यहां मजहबी भेदभाव नहीं है। उपासना पद्धति को लेकर शास्त्रार्थ तो होते रहे हैं, लेकिन इस देश की विशेषता रही है कि दूसरे के सत्य को भी स्वीकार करने की तत्परता रही है। ऋषभदेव जी के बताये हुए ६ सूत्र हैं—असि का अर्थ है, तलवार, रक्षा का शस्त्र। पहला स्थान है असि का। यदि शस्त्र है तो उसके उपयोग की जरूरत नहीं पड़ेगी। शस्त्र है यह जानकारी आक्रमणकारी को गलत रास्ते पर चलने से रोकती है।

इसके बाद ज्ञान की बात आई है—मसि (स्याही) । विद्या, वाणिज्य और शिल्प कारीगरी, टेक्नोलॉजी हैं। इस देश की मिट्टी में, जीवन को कभी टुकड़ों में नहीं देखा गया, समग्रता में देखा गया, समग्रता को जीवन में देखते हुए हमने जीवन के विकास का प्रयत्न किया। इसलिये तो हजारों साल से इस देश का अस्तित्व है। इस देश का लोहा आज भी माना जाता है। देश महान शक्ति बनने की सारी सम्भावना से परिपूर्ण है। यह हमारे मित्र और शत्रु दोनों स्वीकार करते हैं। हमें अवसर मिला है कि नैतिकता के रास्ते पर चलते हुए, धर्म का अवलम्बन करते हुए, हम प्राणी मात्र को सुखी बनाने के अपने संकल्प पर आगे बढ़ने का प्रयास करें। घर के भीतर, घर के बाहर हमारी बढ़ती हुई शक्ति एवं हमारी बढ़ती हुई समृद्धि को देख कर षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं। हमारी अर्थ व्यवस्था को चौपट करने के तरीके अपनाये जा रहे हैं। लेकिन हर संकट को हमने सफलता के साथ झेला है और आने वाले संकटों को हम चकनाचूर करेंगे, यह हमारा विश्वास है। ★

शोक संवेदन

११ दिसम्बर, १९९९, को सनावद में ७८-वर्षीय वाणी भूषण डॉ० मूलचन्द शास्त्री का निधन हो गया।

३ जनवरी, २०००, को नेमावर में जैन न्याय-दर्शन के मूर्धन्य विद्वान, राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित, ८८-वर्षीय डॉ० दरबारी लाल जैन कोठिया का सल्लेखना व्रत धारण कर समाधिमरण हो गया।

१७ जनवरी को आरा में श्री जैन बाला विश्राम के उप अधिष्ठता श्री ज्योतिष चन्द्र का निधन हो गया।

७ फरवरी को दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र नवागढ़ (महाराष्ट्र) में ९३-वर्षीय आचार्य श्री आर्यनन्दी महाराज का महानिर्वाण हो गया।

१० फरवरी को कोसीकलाँ में समाजसेवी, धर्मानुरागी ९०-वर्षीय चौ० फूलचन्द का निधन हो गया।

२३ फरवरी को हरदा (म० प्र०) में ७६-वर्षीय तीन प्रतिमा-धारी, सुश्रावक श्री गुलाबचन्द अजमेरा, जो प्रबुद्ध चिन्तक-लेखक श्री मूलचन्द अजमेरा के ज्येष्ठ भ्राता थे, का स्वर्गवास हो गया।

२८ फरवरी को अहमदाबाद में जैनविद्या के महारथी विद्वान ९०-वर्षीय पं० दलसुखभाई मालवणिया दिवंगत हो गये।

फरवरी में ही इन्दौर में ७६-वर्षीय प्रो० जमनालाल जैन का निधन हो गया।

उपरोक्त दिवंगत के प्रति शोधादर्श परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है और उनकी आत्मा की चिरशान्ति एवं सद्गति के लिए प्रार्थना करता है, तथा शोक संतप्त स्वजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है। ★

आभार

पूर्व-सांसद श्री डालचन्द्र जैन, सागर, ने तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, के शोध पुस्तकालय के लिये श्रीमद् तारण तरण स्वामी के १४ ग्रन्थ भेंट स्वरूप प्रदान किये।

श्री दिनेश चन्द्र जैन एवं श्री मधुप जैन, जैन मेडिकल स्टोर, अलीगंज (जिला एटा), ने चि० अमिताभ एवं सौ० दीपा के शुभ विवाहोपलक्ष पर शोधादर्श को ५० रुपये भेंट किये।

डा० शशि कान्त और श्री रमा कान्त जैन ने अपने पूज्य पिताश्री इतिहास-मनीषी विद्यावारिधि स्व० डॉ० ज्योति प्रसाद जैन की ८८वीं जन्म जयन्ति पर शोधादर्श को ५१ रुपये भेंट किये।

——

पाठकों की दृष्टि में

जैन विद्या के विविध आयामों पर केन्द्रित इस शोध-पत्रिका के स्वरूप में निरन्तर निखार आ रहा है। इसमें समाहित अधिकांश शोध-आलेख जहां एक ओर जैनविद्या से सम्बद्ध नवीनतम अनुसन्धानों एवं विश्लेषण-कार्य को मूर्त करते हैं, वहीं जीवनोपयोगी सामग्री को भी समाहित करते हुए नवजीवन की सार्थक दिशा देते हैं। वस्तुतः इस प्रकार की शोध-पत्रिकाओं की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, जो 'ज्ञान के लिए ज्ञान' की बजाय 'जीवन के लिये ज्ञान' पर केन्द्रित हों। अंक ३९ में प्रकाशित 'जैन दर्शन में मोक्ष तत्त्व' (डॉ० सूरजमुखी जैन), 'धर्म का मर्म-अहिंसा' (श्री नरेन्द्र सिंह चौधरी) आदि लेख इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार डॉ० सुरेन्द्र कुमार आर्य ने 'पश्चिम मालवा के जैन हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार' शीर्षक आलेख में शोध-कर्ताओं के लिए नई जानकारी दी है। पत्रिका में संचित विविध सूचनाएं, समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि भी शोधकों एवं जिज्ञासुओं के लिए उपादेय हैं। आपका सम्पादकीय सदैव की तरह प्रासंगिक चिन्ताओं तथा प्रश्नों को उकेरता है। हाल ही में आपको प्राप्त पुरस्कार के लिए बधाईयाँ।

—(डॉ०) शैलेन्द्र कुमार शर्मा, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

आपको गत नवम्बर ९९ में अजमेर में सम्मानित किये जाने पर बधाई। शोधादर्श-३९ में पहली बार 'भट्टारक पद' पर विचारोत्तेजक आलोचनात्मक सम्पादकीय पढ़ने को मिला। ११ पृष्ठों का यह आलेख पठनीय है। साथ में डा० शशि कान्त का 'अहिंसा कुम्भ' (?) पर तीखा तेवर देखा। मुनि या आचार्य कुछेक वर्षों से राजनीति की ओर अधिक उन्मुख दिखाई दे रहे हैं। डा० शशि कान्त जी ने तो इसे 'तमाशा' ही माना है। अहिंसा मानव धर्म है। सभी प्राणियो के प्रति मैत्री भाव अहिंसा है। शोधादर्श में शैक्षिक जगत—उच्चस्तरीय शोधानुसंधान की जानकारी भी मिलती है।

—(डॉ०) निजामुद्दीन, बालैनी (मेरठ)

कुवलयमाला ३.२७ पद की समीचीन व्याख्या 'गुरुगुण-कीर्तन' शीर्षक के अन्तर्गत सुयोग्य सम्पादक द्वारा की गई है। डॉ० ज्योति प्रसाद जैन का स्तरीय लेख–Proto-historic Tradition अत्यन्त उपादेय और पठनीय है। "जैन दर्शन में मोक्ष तत्त्व–एक वैज्ञानिक विश्लेषण", "धर्म का मर्म–अहिंसा", श्री राजीव कान्त की सशक्त सामयिक कविता—'कारगिल के जवान' पठनीय एवं विचारणीय हैं। समासतः प्रस्तुत उपादेय अंक की प्रस्तुति के लिए सुधी संपादक मण्डल साधुवाद एवं वर्धापना का पात्र है।

–(डॉ०) कैलाश नाथ द्विवेदी, कोंच (जालौन)

आपकी पत्रिका **शोधादर्श** का जीवन में अंक ३९ प्रथम बार ही पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसमें जो भी लेख आपने छापे हैं बहुत ही सुन्दर और उचित भाषा में हैं। मेरे पास **दिशा बोध, धर्म मंगल** कुछ ही समय से आ रहे हैं लेकिन उन सब में प्रथम स्थान आपकी पत्रिका को देना चाहूंगा। मैं किन शब्दों में आपकी सराहना करूँ सोच नहीं पा रहा हूं और न लिख ही पा रहा हूं क्योंकि आज दि० जैन समाज में जो कुछ भी हो रहा है उन सबको पढ़ कर सुन कर मस्तक शर्म से झुक जाता है। जिस समाज में कथनी और करनी में अन्तर आना शुरू हो जाये वह आखिर जनता को कब तक गुमराह करते रहेंगे। आखिर सच्चाई एक दिन सामने आ ही जायेगी। उस वक्त क्या अंजाम भोगना होगा एक विचार करने वाली बात है।

–शान्ती लाल जैन बैनाड़ा, आगरा

शोधादर्श पत्रिका यथा-नाम तथा-गुण के अनुरूप प्रकाशित हो रही है, साधुवाद।

–डालचन्द्र जैन, पूर्व सांसद, सागर

समादरणीय डॉ० शशि कान्त जी, आपकी सम्पादकीय प्रतिभा का आक्षरिक प्रतिरूप **शोधादर्श** का ३९वां अंक प्राप्त हुआ। इस अंक की उपादेयता इसलिए विशिष्ट है कि इसमें अंक ३७ से ३९ तक में प्रकाशित विविध सामग्री का समाकलन प्रस्तुत किया गया है। इससे शोधकर्त्ताओं को अभीप्सित सामग्री के मनोनयन या

निर्वाचन में सुविधा रहेगी। शोधादर्श जैन शोध-वाङ्मय के लिए एक समग्र और सार्थक पत्रिका है।

—(डॉ०) श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

'बालाचार्य' व परिचर्चा तथा 'विचार-बिन्दु' लेख सुने। समाज की स्थिति को देख कर ऐसा लगा कि कुछ लोग "वीर-विहीन मही मैं जानी" के मद में चूर होकर धर्म के साथ मनमानी खिलवाड़ कर रहे हैं, और समाज के मूढ़ लोग उनके चंगुल में फँस रहे हैं। वर्तमान श्रावक नामधारी तो भ्रष्ट हैं ही, गुरु पदधारी और भी भ्रष्ट होते जा रहे हैं। 'अहिंसा महाकुंभ—एक नया तमाशा' में निर्भीक मन्तव्य के लिए अनेक साधुवाद।

—(पं०) पद्मचन्द जैन शास्त्री, नई दिल्ली

अभी शोधादर्श आद्योपांत पढ़ा नहीं है, लेकिन अहिंसा महा-कुम्भ पर आपके विचार उचित व सटीक हैं, दान-दाताओं और श्रावकों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए, लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि सच्चाई की ओर कोई देखता नहीं।

—सुन्दर सिंह जैन, दिल्ली

आपके सम्पादकीय व अन्य लेख तथा डा० शशि कान्त भाई के लेख ने गजब किया है—सदैव की भांति निडरता—शिथिलाचार के विरुद्ध, व स्पष्टवादिता—कौन साहस करेगा, ऐसा लिख कर मरने का, सिर पर कफन बांध कर। डॉ० चीरंजी लाल, आप, डॉ० शशि कान्त, प्रा० सौ० लीलावती को विज्ञ पुरुष समझ कर अब भी एवं आने वाली पीढ़ी सदैव ऋणी रहेंगी।

—महावीर प्रसाद जैन, शाकाहार प्रचारक, नई दिल्ली

आपकी निर्भीकता के लिए बहुत-बहुत साधुवाद। कृपया हमेशा बेधड़क होकर लिखते रहें, डरे नहीं। आज शिथिलाचारी भ्रष्ट मुनियों को उखाड़ फेंकना बहुत जरूरी है।

—मानिक चन्द जैन लुहाड़िया, नई दिल्ली

शोधादर्श-३९ का सम्पादकीय पढ़ा। भट्टारक समस्या पर पूज्य आचार्य विद्यासागर जी का शास्त्रानुकूल लेख जैन प्रचारक में

एवं विद्वत् परिषद के अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन का लेख भी पढ़ा। कुछ ऐसा लगा कि भट्टारक पद का आन्दोलन दक्षिण से उत्तर की ओर आ रहा है। शास्त्र विहित आदर्शों का परित्याग करके नवीन प्रगतिशील धारा को अपनाया जा रहा है। आम्नाय पर विपत्ति आई है। समाज को, प्रबुद्ध समाज को आगे बढ़कर इस आन्दोलन को रोकना होगा, शिथिलाचार से धर्म संरक्षण पर आघात पहुंच सकता है। रोगों का निराकरण करने हेतु साधुओं की परंपरा प्राचीनकाल से चली आ रही है। यही जीवन का चरम लक्ष्य है। राग बढ़ाना तो गृहस्थ रूप में अच्छा है, साधु रूप में नहीं।

–(डॉ०) जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा

मेरी दृष्टि में मुनियों में आ रही आचरणहीनता की सारी जिम्मेदारी उन सुश्रावकों की है जो करोड़ों की सम्पत्ति को स्वाहा करने से पूर्व उसकी यथार्थता/उपयोगिता पर विचार करने को भी अपना अपमान समझते हैं। इन सुश्रावकों को केवल वाहवाही लूटने की ललक होती है। केवल क्रियाकाँडों में लिप्त रहना ही जिनका सर्वोत्तम धर्म है, आचरण-विहीन विवेक शून्य इन सुश्रावकों के कारण हीं हमारी यह स्थिति हुई है। यदि हमने अपने को नहीं सुधारा तो इससे भी बदतर स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए।

–(डॉ०) अशोक सहजानन्द, दिल्ली

आपने दिगम्बर आम्नाय में मुनियों के आचरण को दृष्टि में रखते हुए जो अहिंसा महाकुम्भ पर टिप्पणी की है वह किसी भी हद तक, धन के अपव्यय को इंगित करते हुए आपके विचार में अनुचित हो सकती है परन्तु सभी के दृष्टिकोण से नहीं। आपको शिकायत भी है कि इस विषय पर सब मौन हैं। मैं इसलिये विशेष रूप से अपने विचारों से आपको अवगत कराना चाहता हूँ।

–देवेन्द्र कुमार जैन, पूर्व महानगर पार्षद, दिल्ली

शोधादर्श-३९ में सम्पादकीय, कामदेव मन्दिर पर समीक्षात्मक चर्चा, परिचर्चा, जिज्ञासा, अहिंसा महाकुम्भ पर सार्थक टिप्पणी, समाचार विमर्श, अभिनन्दन, आभार जैसे स्तम्भ समस्त रचना-

कारों, टिप्पणी लेखकों की सूझ-बूझ का परिचय देते हैं। "गुरुगुण-कीर्तन" का चयन वस्तुतः शोधादर्श का आदर्श मंगलाचरण है। समस्त सामग्री बहुशः पठनीय है।

—(श्रीमती) विमला जैन, कटनी

श्री रमा कान्त जैन के 'गुरुगुण-कीर्तन' नामक लेख में आ० विमलसूरि के सम्बन्ध में सटीक नई जानकारी दी गई है। संपादकीय सरल भाषा में बहुत चुटकीली है। यदि कोई अपनी जाति छोड़ कर छोटी जाति में जाकर आनन्द लेना चाहता है तो छोटी जाति वाले का क्या दोष है। उसे तो संख्या वृद्धि की खुशी ही होगी। लेकिन आपका यह कथन सही है कि यदि उन्हें जाना था तो डंके की चोट पर मुनि वेष छोड़ कर जाते। मुनियों ने अपना संविधान बिगाड़ना आरम्भ कर दिया है। ऐसी हालत में अब समय की पुकार है कि चारों संघ के प्रतिनिधियों का सम्मेलन कर श्रमण संविधान के पालन हेतु मन्थन करना चाहिए। शिथिलाचारी या संविधान भंग करने वालों के विरोध में प्रस्ताव पास करने या भाषण मात्र करने से संविधान की रक्षा नहीं होगी। सम्मेलन में ठोस निर्णय लेने होंगे। निर्भीकतापूर्वक सम्पादकीय के लिये बधाई स्वीकारें।

—(डॉ०) लालचन्द्र जैन, वैशाली

अंक ३८ का सम्पादकीय 'न भूतो न भविष्यति, तीस-चौबीसी मन्दिर का प्रतिष्ठा महोत्सव' तथा उसी के अन्तर्गत अखिल भारत-वर्षीय दि० जैन शास्त्रि-परिषद के मनीषी अध्यक्ष प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश के 'पंचकल्याणक-महोत्सव पुनर्मूल्यांकन' शीर्षक लेख की कुछ पंक्तियां एवं डॉ० मनोरमा जैन का 'आत्म शोधन' लेख आज के धार्मिक अनुष्ठानों में होने वाले बाह्याडम्बर, प्रदर्शन एवं हृदयहीनता का दिग्दर्शन करा कर दिग्भ्रमित समाज को संयम और सादगी-पूर्वक जनहित को ध्यान में रखते हुए धर्मप्रभावना करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। अंक ३९ के सम्पादकीय में बालाचार्य योगीन्द्रसागर के भट्टारक पद ग्रहण से सम्बन्धित प्रश्नों के साथ विद्वत्परिषद के विद्वान अध्यक्ष डा० रमेश चन्द्र जैन के 'साधु संस्था खतरनाक मोड़

पर' शीर्षक लेख से 'कुछ साधु ऐसे भ्रष्ट मार्ग पर आ गये हैं कि तन पर वस्त्र को छोड़ कर आज उनके पास सब कुछ है.....'आदि पंक्तियों को उद्धृत कर वर्तमान में अन्ध श्रद्धालु श्रावकों तथा सुविधाभोगी साधुओं पर कटु प्रहार कर उन्हें सचेत करने का साहसपूर्ण कदम उठाया गया है। डा० शशि कान्त ने भी अपने 'समय रहते समाज चेते' लेख द्वारा अहिंसा महाकुम्भ को एक तमाशा बताते हुए समाज को उद्बुद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया है। प्रत्येक अंक की समाचार विविधा तो समाज की सम्पूर्ण गति-विधियों का दर्पण ही है। सत्य का साक्षात्कार करा कर प्रचलित कुरीतियों-अन्धविश्वासों आदि से मुक्त स्वस्थ समाज तथा उन्नत राष्ट्र के निर्माण में तत्पर **शोधादर्श** एक शोधपूर्ण आदर्श पत्रिका है।

–(डॉ० श्रीमती) सूरजमुखी जैन, मुजफ्फरनगर

बिना लाग-लपेट के खरी बात कहना आज टेढ़ी खीर है। परन्तु आपकी निर्भीक लेखनी अपने कथ्य को रोचक व सार्थक ढंग से व्यक्त करती है जो सर्व स्वीकार्य रहती है। आपके सम्पादकीय ज्वलन्त/जीवन्त समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए दिशा-निर्देश का कार्य करते हैं। संयोग से प्रतिष्ठा महोत्सव, मुनि संघ और जैन समाज तथा सूत्रधार विद्वत्‌ज्जन वर्तमान सन्दर्भ में चर्चा/निशाने पर हैं। हमारा अपरिग्रह, अहिंसा, अनेकान्त को प्राण मानने वाला समाज जब इसके ठीक उलट चलेगा तो कटु आलोचना होनी ही चाहिए। **शोधादर्श** आत्मनिरीक्षण के शानदार अवसर प्रदान करता है, यह सुख्यात तथ्य है।

–मोतीलाल जैन 'विजय', कटनी

सम्पादकीय लेख प्रत्येक पत्र/पत्रिका का प्राण होता है, जिसमें सम-सामयिक ज्वलन्त समस्याओं पर समाधानात्मक प्रकाश डाला जाता है। 'बालाचार्य योगीन्द्रसागर जी की विचित्र आध्यात्मिक यात्रा' के विविध पहलुओं से उत्पन्न विकृतियों का खुलासा तो सम्पादकीय में किया ही गया है, उनके दीक्षा-गुरुओं, विद्वानों, श्रेष्ठियों, अंध भक्तों का ध्यान भी समस्या की ओर बखूबी आकर्षित

किया गया है ताकि नई विकृतियां उत्पन्न न हों। ऐसे साहसिक सम्पादकीय के लिये बधाई स्वीकार करें। 'जैन दर्शन में मोक्ष तत्त्व—एक वैज्ञानिक विश्लेषण' की लेखिका डॉ० (श्रीमती) सूरजमुखी जैन का लेख अपने आप में पूर्ण हैं। 'जिज्ञासा' के अन्तर्गत दिये गये समाधान भी ज्ञानवर्द्धक एवं सिद्धान्तों पर आधारित होते हैं।

—लाल चन्द्र जैन 'राकेश', गंज बासोदा (विदिशा)

शोधादर्श बराबर आया है। आप लोगों ने बहुत अच्छा इस magazine को बना रखा है। सामयिक विषयों पर स्पष्ट विचार समाज के लिए उपयोगी होते हैं। स्व० डॉ० ज्योति प्रसाद जी की पुण्य स्मृति को बनाये ही नहीं रखा है बल्कि आप सजीव और मार्गदर्शक नेतृत्व देते हैं।

—सुबोध कुमार जैन, आरा (बिहार)

जैन समाज को निर्भीकता से टटोलने का आपका शोधादर्शीय प्रयास सराहनीय है। किसी नये सुझाव या सुधारात्मक प्रयास पर आपका यह कहना कि अब तक क्यों नहीं किया, मेरी दृष्टि में ठीक नहीं है—"जब जागे, तब सवेरा।" "साधु को साधु ही रहने दें" (पृ० २४७), यह कथन उचित हैं किन्तु अब यह समाज पर ही निर्भर नहीं है क्योंकि साधु गृहस्थाचार्य, तांत्रिक, अनुष्ठानकर्ता, ज्योतिषी, मालिक, पूंजीपति आदि अनेक रूपों में सामने आ गया है। ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियां परम शिष्य-शिष्या के रूप में समाज का शोषण कर रहे हैं। विद्वान कुछ कहते हैं तो पीछी का आतंक दिखा कर चुप होने के लिये विवश किया जाता है।

—(डॉ०) सुरेन्द्र कुमार जैन, बुरहानपुर

मैं प्रायः सामाजिक पत्रिकाएं पढ़ती रही हूँ। इधर कुछ दिनों से धार्मिक व विविध विषयों की पत्रिकाएं अधिक रुचिकर प्रतीत हो रही हैं। शोधादर्श की सामग्री तो विविधता के कारण अधिक प्रिय हो चली है। इसमें गुरुगुण-कीर्तन, जिज्ञासा, साहित्य सत्कार, विचार-विन्दु, समाचार विमर्श तथा सबसे बढ़ कर सार्थक सम्पादकीय चिन्तनपरक होता है। शोक संवेदन, आपके पत्र व आभार

सम्पादक मण्डल की सहृदयता के परिचायक स्तम्भ हैं। पत्रकारिता में श्रेष्ठतम योगदान हेतु आप जैसे ज्ञानवृद्ध सुसंस्कारित आदर्श सम्पादक का अभिनन्दन निश्चय ही प्रशंसनीय है।

–(कु०) रचना जैन, कटनी

'गुरुगुण-कीर्तन' में गाथा का भावार्थ एवं विवेचन, सदा की भांति, ज्ञानवर्द्धक तो है ही, संघ-विभाजन अर्थात् पंथ-मतभेद के विरुद्ध भी एक श्रेष्ठ आह्वान है। सम्पादकीय—"बालाचार्य जी की विचित्र आध्यात्मिक यात्रा से उभरे कुछ प्रश्न", विचार-बिन्दु—"भट्टारक—तब और अब" तथा प्रसंग—"अहिंसा-महाकुम्भ: एक नया तमाशा" में उठाये गये ज्वलन्त प्रश्नों पर आज साधु एवं श्रावक—दोनो ही वर्गों को अत्यन्त विचार-मन्थन करके अविलम्ब सम्यक् एवं शास्त्रानुकूल प्रवृत्तियों व आचरण-पद्धतियों पर ध्यान देने एवं अपना ली गईं कुप्रवृत्तियों को त्याग देने की नितांत ही आवश्यकता है। "कामदेव मन्दिर—एक विमर्श" में जस्टिस श्री एम० एल० जैन ने भ्रामक शब्दावलियों के प्रयोग से समाज के कर्णधारों को जो सचेत किया है, उसके पुरजोर समर्थन की आवश्यकता है। कुल मिलाकर पत्रिका समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध सजग प्रहरी की भूमिका सतत् निभा रही है।

–मनोज कुमार जैन 'निर्लिप्त', अलीगढ़

शोधादर्श-३८ में प्राकृत-अर्धमागधी भाषा पर सामयिक लेख पाठकों पर अच्छा प्रभाव छोड़ते हैं। डा० जगदीश चन्द्र जी जैसे समर्पित विद्वान का पुण्य स्मरण सर्वथा प्रशंसनीय है। परिचय, रिपोर्ट, साहित्य-सत्कार अच्छे स्तम्भ हैं। विमल समाधि मन्दिर, कामदेव मन्दिर कभी भी प्रभावना स्थल नहीं कहे जा सकते। सम्पादकीय लेख आंखें खोलने वाला है। शास्त्रि-परिषद हो या विद्वत्परिषद् आपकी फटकार व्यक्ति को सोचने को विवश करती है।

–सिंघई मुकुल जैन, कटनी

शोधादर्श-३९ प्राप्त हुआ। एक ही बैठक में पूरी पत्रिका पढ़ कर मन प्रसन्न हुआ। आपने–सम्पादकीय, समय रहते समाज चेते,

राष्ट्र की अस्मिता संकट में, आदि के द्वारा पूज्य मुनिराजों, विद्वानों एवं राजनीतिज्ञों की लोकेषणा के मादक नशे पर तथा पैसे के बल पर समाज में प्रतिष्ठित हो रहे लोगों पर साहसपूर्वक समयोचित प्रहार किया है। असर होगा। शोधादर्श की आद्योपांत सम्पूर्ण सामग्री समाज के प्रबुद्ध पाठक से लेकर जनसाधारण तक को निश्चित ही प्रभावित करेगी। आपकी प्रत्येक कविता एवं आलेख चिन्तनयुक्त, प्रेरणादायक है। पाठक पत्रिका पढ़ कर समाज में सर्वत्र व्याप्त हो रही भांति-भांति की विसंगतियों को कैसे दूर करें ?— विषय पर सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। परम श्रद्धेय, गुरुवर, डॉ० ज्योति प्रसाद जैन के विद्वान, सूझ-बूझ के धनी, दूरदर्शी पुत्रों की पैनी दृष्टि एवं जुझारू व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप शोधादर्श के प्रत्येक आलेख में झलकती है।

—(डॉ० श्रीमती) रमा जैन, छतरपुर

शोधादर्श-३९ हाथ लगा। आद्योपान्त सम्पूर्ण पढ़ कर ही छोड़ पाया हूं। कुछ लेख तो ऐसे थे जिनको दो बार पढ़ने पर भी मन नहीं भरा। शोधादर्श पत्रिका समाजोपयोगी तो है ही, साथ में वतमान स्थिति को भी दर्शाती है। आपका सम्पादकीय बालाचार्य योगीन्द्रसागर के सम्बन्ध में पढ़ा, मन को बहुत भाया। विद्वत् परिषद में विभाजन भी अच्छा लगा परन्तु खेद व दुःख हुआ कि एक आर्ष-मार्गी संस्था पंथवाद के कारण अलग-अलग हो गयी है। जब विभाजन हुआ उस समय मैं जयपुर में था। तिजारा अधिवेशन में भी गया था। बहुत कुछ देखने को मिला, बाद में सुनने को भी मिलता रहा। मेरी राय में तो डॉ० शीतलचंद (मन्त्री), व डॉ० रमेश चन्द्र (अध्यक्ष) वाली परिषद ही सही व आर्षमार्गी मानी जाये तो ठीक रहेगा। शोधादर्श पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि यह स्पष्टतया सामाजिक धार्मिक कुरीतियों पर सबल एवं सक्षम प्रहार करने वाला पत्रास्त्र है। आपको सम्मानित होने पर बधाई।

आचार्य सुधर्मसागर की मुजफ्फरनगर की 'ममता' कहानी का पटाक्षेप नहीं हो पाया कि सोनागिर में मुजफ्फरनगर निवासी

प्रवीण जैन की पुत्री (२१-वर्षीय) नेहा की कहानी प्रारम्भ हो गयी। दिनों दिन घट रही घटनाओं से विदित होता है ये आचार्य वास्तव में नग्न रूप में व्यापारी हैं। सोनागिर में भी उनकी पिटाई नेहा के घर वालों ने की तथा नेहा को घर ले गये। मेरी समझ में यह नहीं आता है कि यह सब हमारी इतनी बड़ी समाज, विद्वान, मुनिगण सुन रहे हैं परन्तु वे मौनव्रत लिये हैं। विद्वत्परिषद, शास्त्रि-परिषद व महासभा का क्या औचित्य व महत्त्व है जब जैन शासन की आत्मा व श्रद्धा पर आ रही आंच को रोकने में वे असमर्थ हैं ?

—(पं०) सुनील जैन 'संचय', नरवां (सागर)

तन के कपड़े उतार फेंक मुनि-त्यागी-वैरागी हो जाइए। खाने-कमाने घर-परिवार की परेशानियों से मुक्त हो जाइये। जहां जाइये, वहां आदर के साथ शुद्ध अच्छा आहार पाइये। पहले सम्यक् ज्ञान कर मुनि-त्यागी-वैरागी होना कठिन था। अब केवल भेष बदल कर मुनि-त्यागी-वैरागी होने की सुविधा उपलब्ध है। घबराइये नहीं, विराम से आहार लेना, सर्दी-गर्मी का सहन करना अभ्यास से आ जाता है। केवल हिम्मत चाहिए नग्न होने की, जो गुरु कृपा से हो जाती है। गुरु के पास रह कर एक दिन स्वयं गुरु बन जाइये और दो-चार शिष्य बना कर आचार्य पद पाइए। शास्त्र पढ़ कर उपदेशक हो अज्ञानियों के बीच ज्ञानी कहाइये। शास्त्रों की नकल कर शास्त्र प्रणेता बन जाइये। आलोचना करना निन्दा है, बता कर श्रोताओं को अपना भक्त बनाइये। अपने गुरु की जय बुला कर अपनी जय-जयकार कराइये। सभी को अपना जैसा होने का उपदेश देकर अपनी जमात बढ़ाइये। नियमों की पटरी पर अपनी गाड़ी दौड़ा कर नियम की पटरी पर चलने वालों को अंधोगामी बताइये। नये मन्दिर और तीर्थ की स्थापना करा कर काले धन को सफेद बनवा कर अपने नाम पर उसका नाम रखाइये तथा अपनी प्रशस्ति लिखवा कर यशस्वी हो जाइये। अपने भक्तों से अपनी महिमा के गीत सुन आनन्द पाइये। मन्त्र-तन्त्र से अपने भक्तों को आकर्षित कर अपना सेवक बनाइये और उनसे अपने आडम्बरपूर्ण कार्य करा कर अपने

को निर्लिप्त बताइये। मुनि-त्यागी-वैरागी होने की भरती खुली है। इसके लाभ लेने से वंचित न रह जाइये। शीघ्रता कीजिये, न जाने जीवन का कब अन्त हो जावे तो पछताते रह जाइए।

मुनि वर्ग ग्रन्थ **समयसार** की गाथा १५२-१५३ तथा बन्ध के अधिकार को पढ़ता है किन्तु उनमें क्या कहा है उस पर ध्यान नहीं देता या समझता नहीं है। उनके श्रद्धालु आलोचकों से कहते हैं कि "मुनि जैसी कठोर चर्या करके दिखाओ तब जानें।" वे नहीं जानते कि कठोर चर्या ने मुनि को कठोर परिणामी बनाया है जबकि मुनि को सरल परिणामी होना चाहिए। यह ठीक है कि मुनि होना सबको वैसे ही कठिन है जैसे भीख का मांगना मान-अपमान से ऊपर उठ कर करना होता है। तो क्या भीख मांगने वाला पूज्य हो जावेगा ?

—धन्य कुमार जैन, पूर्व विधायक, सिहोरा (जबलपुर)

शोधादर्श-३८ में दर्ज मेरे सवालों का जवाब श्री प्रकाश चन्द्र जैन ने **शोधादर्श**-३९ में दिया है। मैं उनका मशकूर हूं। परन्तु मुझे लगा कि मैं अपनी शंका को पूरी तरह नहीं समझा सका। मेरी शंका यह है कि जब आत्मा में आस्रव तत्त्व का परिणमन होता है तो उसके चारों ओर मौजूद असंख्य कर्म वर्गणाओं में से कुछ पुद्गल कर्म में परिणत होकर आत्मा को बन्धन करने के लिए आते हैं, तब कौन सा कर्म, किस मिकदार में किस अवधि के लिए आता है। यह प्रक्रिया स्वचलित होते हुए भी यह सवाल उठता है मेरे मन में कि क्या यह कर्म वर्गणाओं में निहित दिमाग (चैतन्य तत्त्व) की ओर इंगित नहीं करती ? नेमिचन्द्र ने अपने **गोम्मटसार** में यों लिखा है—

कम्मत्तणेण एक्कं दव्वं भावोत्ति होत्ति दुविहं तु।
पोग्गपिण्डो दव्वं तस्सत्ती भावकम्मं तु ॥

(कर्मकाण्ड, ६/६)

याने कर्मत्व एक होते हुए भी द्रव्य कर्म और भाव कर्म इस प्रकार दो तरह का है। (कर्म) पुद्गल पिण्ड द्रव्य कर्म है और उसमें (फल देने की) शक्ति है वह भाव कर्म है।

यह सिद्धान्त इस बात के बहुत नजदीक लगता है कि जिन्हें हम द्रव्य कर्म कहते हैं उनमें भाव होता है और वह चैतन्य तत्त्व की निशानी है। यदि ऐसा न हो तो कर्म के मिजाज, मिकदार और मीआद की निश्चितता के निर्णय में बड़ी कठिनाई आ जाती है। शंका का आधार यह भी है कि जैन दर्शन ने "ईश्वर" की सारी शक्तियां कर्मों में होना पाया है इसलिए ईश्वर की सत्ता से इंकार भी किया है। यदि पुद्गल कर्मों में भाव कर्म है तो फिर उनमें जीवांश मानना पड़ जाएगा। जीवन की संध्या में मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या यह सही है, और नहीं, तो क्यों।

इस सवाल का जवाब श्वेताम्बर आगम में मिले या दिगम्बर आगम में, स्वागत योग्य है। दरअसल मैं जैनागम को इन दो श्रेणियों में बांटने का कतई विरोधी हूं। सारा जैनागम मेरी अपनी ही नहीं सारे विश्व की पैतृक सम्पत्ति है और किसी आगम के विषय में किसी की ठेकेदारी मुझे मंजूर नहीं। मेरी कमजोरी तो यह है कि मैं किसी भी आगम का 'अ, आ' भी तो नहीं जानता। मुझे लगता है कि आज का कम्प्यूटर क्या इस बात का प्रमाण है कि पुद्गल में भी दिमाग है।

—(जस्टिस) एम० एल० जैन, नई दिल्ली

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६००४

श्री अंशु जैन 'अमर' : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

श्री कैलाश चन्द जैन : सेवा-निवृत मण्डल अभियन्ता फोन्स; ३७/७बी, खेलात बाबू लेन, कलकत्ता-७०००३७

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन (स्व०) : विश्व-विश्रुत विद्वान

पं० नाथू लाल जैन शास्त्री : ४०, हुकमचन्द जैन मार्ग, इन्दौर-४५२००२

श्री मूलचन्द्र जैन (अजमेरा) : पोस्ट बाक्स नं० ५, दाल मील, हरदा (म० प्र०)-४६१३३१

श्री रमा कान्त जैन : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

श्री राजीव कान्त जैन : सीनियर डी०एस०टी०ई०, पश्चिम रेलवे; रेलवे आफिसर्स बंगला नं० ५, कोठी कम्पाउन्ड, राजकोट-३६०००१

डॉ० विजय कुमार जैन : आचार्य, केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ; ५/७७९, विराम खण्ड-५, गोमती नगर, लखनऊ-२२६०१०

श्री वेद प्रकाश गर्ग : १४, खटीकाना, मुजफ्फरनगर-२५१००२

डॉ० शशि कान्त : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

श्री शांतिलाल के० शाह : कुसुम बंगला, राजवाड़ा, गणेश दुर्ग, सांगली-४१६४१६

श्री ज्ञान चन्द जैन : वयोवृद्ध पत्रकार, साहित्यकार और इतिहास-मर्मज्ञ; २४५/३१, भवाना सिंह शिवाला रोड, निकट जैन मन्दिर, यहियागंज, लखनऊ-२२६००३

विद्वानों, विद्यार्थियों और संस्थाओं के लिए रियायती पैकेज

ज्ञानदीप प्रकाशन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-226004 से **मात्र रु० 60/-** (साठ रुपये) डाक एवं प्रकीर्ण व्यय हेतु **मनीआर्डर** द्वारा भेज कर रु० 150/- मूल्य की निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त की जा सकती हैं :—

श्री रमा कान्त जैन कृत ललित निबन्ध संग्रह **गिलास आधा भरा है** और **डॉ० ज्योति प्रसाद जैन** कृत—

जैन ज्योति : ऐतिहासिक व्यक्तिकोश प्रथम खण्ड (अ-अं),
उत्तर प्रदेश और जैन धर्म, रुहेलखण्ड-कुमायूं और जैन धर्म
श्री महावीर जिन वचनामृत, श्री महावीर जिन स्तवन
महावीर युग और निर्वाणकाल, शाकाहार
आत्मदर्शन एवं ज्ञानचिन्तामणि

आवश्यक

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन के सभी ग्रन्थों और लेखों आदि का स्वत्वाधिकार (copyright) 'ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट' में निहित है। अतः उनकी किसी पुस्तक या लेख आदि को प्रकाशित करने के पहले ट्रस्ट के न्यासी सचिव श्री रमा कान्त जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-226004 से कृपया अनुमति अवश्य प्राप्त कर ली जाय।

डॉ० ज्योति प्रसाद जैन प्रणीत

Jainism, the Oldest Living Religion (2nd ed.)
पार्श्वनाथ विद्यापीठ, आई० टी० आई० रोड, वाराणसी-221005 से,
इसका गुजराती अनुवाद—**जैनधर्म सहुथी वधुप्राचीन अने जीवंत धर्म**
श्री सी० हेमशाह एण्ड फेमिली पब्लिक चैरिटेबिल ट्रस्ट, नवरंगपुर, अहमदाबाद-380009 से,

और **Essence of Jainism**
शुचिता पब्लिकेशंस, अभय कुटीर, सारनाथ, वाराणसी-221007 से प्राप्त की जा सकती हैं।

श्री रमा कान्त जैन प्रणीत

हिन्दी भारती के कुछ जैन साहित्यकार
जैन विद्या संस्थान, श्री महावीर जी-322220/सवाई मानसिंह रोड, जयपुर-302004 से प्राप्त की जा सकती है।